



वर्ष ३५

अंक ५



हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-पापवासनामयी शूर्पणखाको दण्ड [कविता]	८९३
२-कल्याण ('शिव')	... ८९४
३-मानवता महाव्रत आवश्यक क्यों ? (तत्त्व-चिन्तक स्वामीजी अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज)	... ८९५
४-भगवान्की दिव्य ज्योति मेरे अंदर प्रकट हो गयी है	... ८९७
५-पागलकी झोली (महात्मा श्रीश्रीसीतारामदास उंकारनाथजी महाराज)	... ८९८
६-भारतीय समाज और साहित्यपर रामके व्यक्तित्वका व्यापक प्रभाव (श्रीरघुवीरशरणजी अग्रवाल एम० ए०, बी० एड०)	... ९०१
७-भाव-संशुद्धि (विद्यामार्तण्ड डा० मङ्गलदेव-शास्त्रीजी)	... ९०३
८-पश्चिमकी तड़क-भड़कमें भूलकर अपने मूल आधारको न छोड़ें (महात्मा गांधी)	... ९०३
९-मधुर	... ९०४
१०-बद्ध कौन ? [कहानी] (श्री 'चक्र')	... ९०५
११-व्यावहारिक अर्थशास्त्र (डा० सोहनलालजी गुप्त एम० ए०, एम० काम०, एल्-एल्-बी०, पी-एच्-डी०)	... ९०८
१२-प्रभुके दर्शनका कभी अभाव नहीं होता [कविता]	... ९११
१३-वैष्णवताका स्वरूप (श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका एक भाषण)	... ९१२
१४-आत्म-निर्भरता (पं० श्रीजयकान्तजी झा)	... ९१७
१५-सावधान	... ९१८
१६-उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी,	

कल्याण, सौर ज्येष्ठ २०१८, मई १९६१

विषय	पृष्ठ-संख्या
श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)	... ९१९
१७-भगवान्की अहैतुकी कृपाका चमत्कार है	... ९२३
१८-वैज्ञानिक संजीवनी (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)	... ९२४
१९-तन-मन-वचनका सदुपयोग [कविता]	... ९२९
२०-जब भगवान्की परीक्षा ली गयी [कहानी] (श्री 'उषाराज')	... ९३०
२१-रूपकी साध (एक तरुण साधककी डायरीसे)	... ९३५
२२-संगीत—एक पवित्र परामर्श (पं० श्री-जानकीनाथजी शर्मा)	... ९३६
२३-एक साधकके उद्गार तथा प्रभुसे प्रार्थना	... ९४०
२४-उच्चस्तरका जीवन किसमें ?	... ९४१
२५-मेरी नीचता और दयामयका स्वभाव [कविता]	... ९४३
२६-परमार्थ-पत्रावली (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पत्र)	... ९४४
२७-क्या-क्या बढ़ा और बढ़ रहा है	... ९४५
२८-भक्ति और ज्ञानमें भेद (पं० श्रीदेवीदत्त-जी मिश्र)	... ९४६
२९-तमसो मा ज्योतिर्गमय [कविता] (डा० मोहनजी अवस्थी एम० ए०, डी० फिल)	... ९४८
३०-पढ़ो, समझो और करो	... ९४९
३१-सांस्कृतिक प्रोग्रामोंमें लड़कियोंके नाच-गान-पर कुछ रोक	... ९५६
३२-मेरा महत्त्व मेरे प्रभुकी दृष्टिमें है, वे मेरी कभी भी उपेक्षा नहीं करते (श्री-कुञ्जविहारीजी)	... ९५६

चित्र-सूची

१-उमाकी गोदमें गणेश	...	...	(रेखाचित्र)	... मुखपृष्ठ
२-शूर्पणखाको दण्ड	...	...	(तिरंगा)	... ८९३

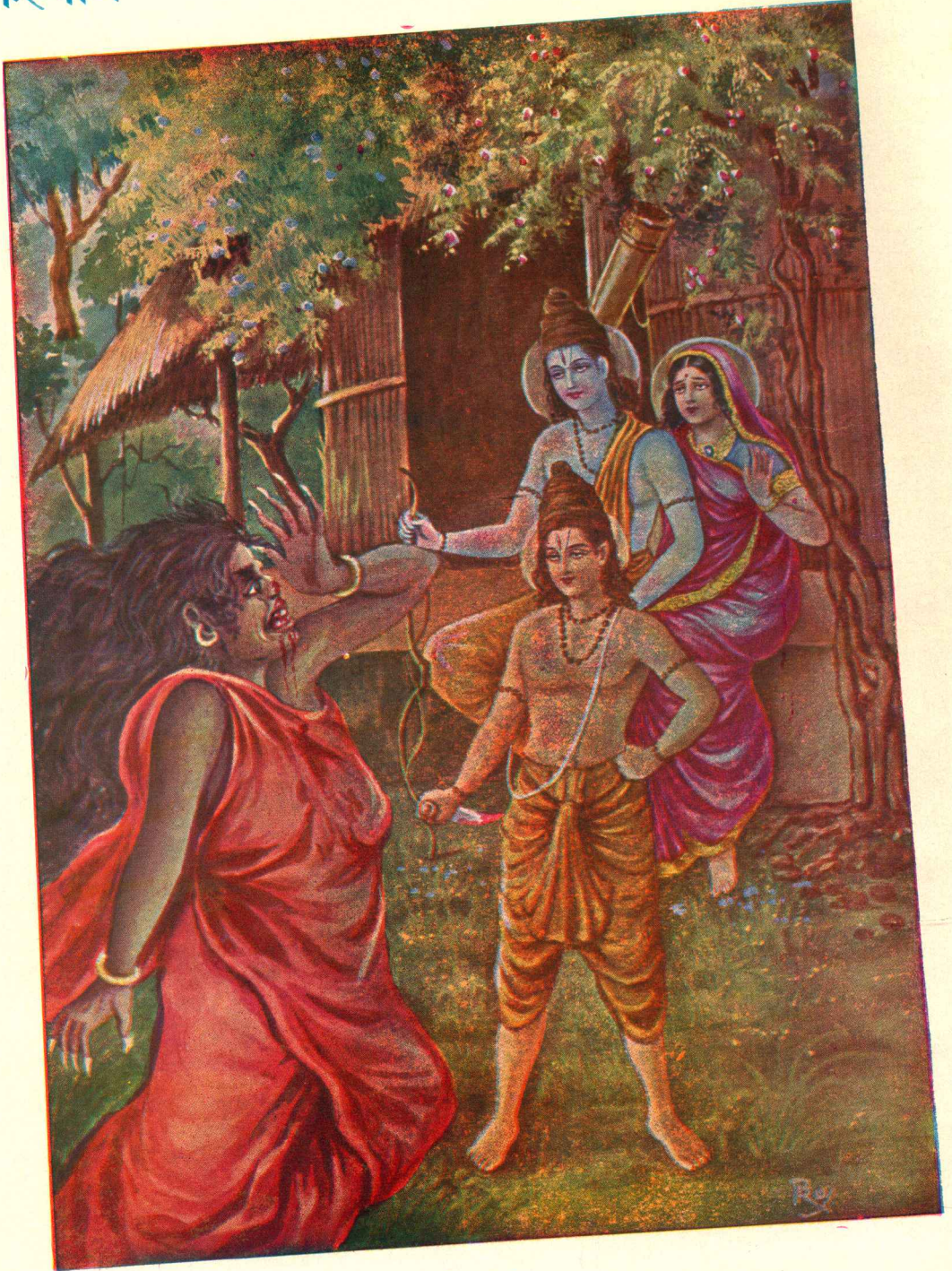
वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिल्लिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनंद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

{साधारण प्रति
भारतमें .४५
विदेशमें .५६
(१० पैसे)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्नलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर



शूर्पणखाको दण्ड

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च । यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम् । श्रुत्वा हृदीर्यते साम्नि तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

वर्ष ३५ }

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ २०१८, मई १९६१

{ संख्या ५
पूर्ण संख्या ४१४

पापवासनामयी शूर्पणखाको दण्ड

पाप-वासना भर मनमें जो जाती किन्हीं महत्के पास ।
उन्हें डिगाने धर्ममार्गसे करती मिथ्या नीच प्रयास ॥
वह राक्षसी शूर्पणखा-सी करती अपना आप विनाश ।
होती विकृत मुखाकृति, कटते नाक-कान, होता उपहास ॥

कल्याण

याद रखो—मनुष्य-जीवनके वास्तविक स्वरूपका पता उसके बाहरी वेशभूषासे नहीं लगता, उसके विचार तथा आचरणसे ही लगता है। जिसके जैसे विचार और आचरण हैं, वैसा ही उसका स्वरूप है। अतएव तुम निरन्तर अपने विचार तथा आचरणको सँभालते रहो।

याद रखो—जबतक तुम्हारा विवेक जाग्रत है, तभीतक तुम्हें अपने अच्छे-बुरे विचार और आचरणका पता लगेगा। मनुष्यका विवेक जब लुप्त हो जाता है, तब उसकी अच्छा-बुरा देखने-परखनेकी दृष्टि नष्ट हो जाती है और बुरे वातावरण तथा चिन्तनसे यदि बुराईमें अच्छाई दीखने लगती है, तब तो उसका अनायास ही पतन हो जाता है; क्योंकि तब उसकी धारणामें पाप करनेपर 'मैं पुण्य करता हूँ' ऐसी मिथ्या अनुभूति होती है और वह पापमें सफलता प्राप्त करनेपर अपनेको गौरवशाली तथा सफल-जीवन मानता है। इसलिये जहाँतक बने, विशुद्ध सत्सङ्ग तथा शुद्ध स्वाध्यायसे विवेकको जाग्रत रखो।

याद रखो—पतन जितना सहज और शीघ्र होता है, उतना सहज शीघ्र उत्थान नहीं होता। फिसलाहटसे भरा है जगत्! सावधान रहो, सदा गिरनेसे बचो और निरन्तर ऊपर उठने अथवा सन्मार्गपर आगे बढ़नेका प्रयास उत्साहपूर्वक करते रहो।

याद रखो—विवेक नष्ट होकर मनुष्यका जो पतन होता है, उसमें सबसे प्रधान कारण है कुसंग। कुसंग केवल किसी पतित मनुष्यके सङ्गको ही नहीं कहते। प्रत्येक इन्द्रियका प्रत्येक विषय ही कुसंग बन सकता है। जिस प्राणी-पदार्थके देखने, सुनने, सूँघने,

चखने और स्पर्श करनेसे पापमें पुण्यकी तथा बुराईमें भलाईकी धारणा होती हो, भोगोंके लिये अनुचित लालसा जगती हो, वह सभी कुसंग है। साहित्य, दृश्य, मनुष्य, भोजन-पान, वस्त्राभूषण, स्थान, वार्तालाप—सभी कुसंग बन सकते हैं। अतएव कुसंगसे सदा बचते रहो। सत्संगका सदा सेवन करो।

याद रखो—सत्संग किसी प्राणी, स्थान या वस्तुका नाम नहीं है। सत् हैं भगवान्, सत् है सदाचार, सत् है सद्विचार—जिस संगसे श्रीभगवान्में प्रीति बढ़ती हो, सदाचार और सद्विचारोंका उदय और संवर्धन सहज ही होता हो, वही सत्संग है। सत्संगको अमूल्य धन समझो, सत्संगके साथ किसी भी धन, सौभाग्य या पुण्यकी तुलना नहीं हो सकती। सत्संग मनुष्यको समस्त पाप-तापसे सर्वथा छुड़ाकर दिव्य पुण्यमय तथा सुखमय बना देता है। सत्संग अतुलनीय धन है।

याद रखो—विषयी जगत्का संग एक बार सुहावन लगता है और वह लगता है इन्द्रियोंके बहिर्मुखी—भोगमुखी स्वभावके कारण ही। पर विषयी जगत्का संग वस्तुतः मीठे विषके समान है। उसका तत्त्व-रहस्य न जाननेके कारण ही उसमें सुख तथा प्रिय बुद्धि हुआ करती है। जिनकी विवेककी आँखें खुली होती हैं, वे प्रत्यक्ष देख पाते हैं उसके भीतरी असली भयानक रूपको और उसके द्वारा होनेवाले घोर विनाशमय परिणामको। इसलिये जहाँतक बने, प्रयत्नपूर्वक मन तथा इन्द्रियोंको अन्तर्मुखी करो, उन्हें सत्में लगाये रखो, भगवान्के साथ नित्य निरन्तर जोड़े रखनेका प्रयत्न करो। तभी मानव-जीवन सफल होगा और जीव-जीवनका दुःखमय प्रवाह सूखेगा।

‘शिव’



मानवता महाव्रत आवश्यक क्यों ?

(लेखक—तत्त्व-चिन्तक स्वामीजी अनन्तश्री अनिरुद्धाचार्य वैकटाचार्यजी महाराज)

व्याधि और समष्टिका हित, अभ्युदय एवं सुख-शान्तिके लिये कतिपय नियमोंका पालन आवश्यक है । अतीतमें ऐसे नियमोंको मानवतापूरक महाव्रतके नामसे अभिहित किया जाता था । ये नियम मानव-निर्मित न होकर प्रकृतिके सनातन नियमोंकी सनातन संहिताके रूपमें आहत होते थे । अतएव इन व्रतों (कर्तव्यों) का सम्बन्ध एक देश, एक काल अथवा वर्गविशेषसे न होकर सर्वकाल, सर्वदेश, सर्वदेश एवं इससे भी आगे जाकर मानवमात्रसे था । इन महाव्रतोंके पालनसे न केवल मानवमात्र ही सुखी-संतोषी था, अपितु उनसे मिलनेवाला सुख-लाभ प्राणि-मात्रको यथावत् प्राप्त था । प्रस्तुत मानवता महाव्रत विधि-निषेध-रूपसे परस्पर-पूरक दो धाराओंमें अनुस्यूत है और इनके मूल-स्वरूप इस प्रकार हैं ।

मानवता-महाव्रत की

१० निषेधात्मक मर्यादाएँ	१० विधानात्मक मर्यादाएँ
१—चौर्य-त्याग	१—दान देना
२—हिंसा-त्याग	२—पीडित-रक्षा
३—व्यभिचार-त्याग	३—सेवा करना
४—क्रूरवचन-त्याग	४—प्रिय बोलना
५—असत्य-त्याग	५—सत्य बोलना
६—पैशुन्य-त्याग	६—हित बोलना
७—असम्बद्ध प्रलाप-त्याग	७—स्वाध्याय
८—परधन-हरणेच्छा-त्याग	८—इन्द्रिय-निग्रह
९—अनिष्टचिन्तन-त्याग	९—संतोष
१०—नास्तिकता-त्याग	१०—आस्तिकता

जबतक विश्वका मानव-समाज विधिनिषेधात्मक इन प्राकृतिक मर्यादाओंका पालन मनसा, वाचा, कर्मणा

करता रहा, तबतक विश्वमें सुख-शान्ति बनी रही । विश्वमें सुख-शान्तिका मूल धर्मनियन्त्रित अर्थ-काम है । इसलिये भारतीय दीर्घदृष्टाओंने 'तेषु धर्मोत्तरः स्यात्' अर्थात् अर्थ और काममें धर्मसे नियन्त्रित रहना अभ्युदय-प्रद माना है । धर्मनियन्त्रित अर्थ-कामके सेवनसे मानवको दुःखाभाव और सुखप्राप्तिरूप दोनों पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं । किंतु उन पुरुषोंको, जिनका जीवन धर्महीन अर्थ-कामसे चिपका रहता है, उक्त पुरुषार्थद्वयकी प्राप्ति कथमपि नहीं हो सकती । उन्हें तो 'विपरीतं च फलति' इस नियमके अनुसार विपरीत फल ही मिलता रहेगा ।

धर्म-विहीन अर्थ-कामके सेवनसे मानवकी विवेकशक्ति कुण्ठित हो जाती है और वह निरंकुश हाथीके समान वासनाका दास बन जाता है एवं उसकी तृप्तिके लिये जघन्य-से-जघन्य दुष्कार्य करनेमें संकोचका अनुभव नहीं करता । काञ्चनमें आसक्त मानव मिथ्याप्रतारण, चौर्य, कपट-व्यवहार, छल-प्रपञ्च, प्राणि-हिंसा आदि पाप-कर्मोंके द्वारा रात-दिन अर्थ-संचयमें व्यग्र होकर लगा रहता है । भले ही उपार्जित अर्थ-राशि उसके भोगकी वस्तु न बनकर तृतीयागति (नाश) को प्राप्त हो जाय । इसी प्रकार काममें आसक्त मानव भी अर्थासक्त मानवकी अपेक्षा अधिक पशुभावको प्राप्त हो जाता है; क्योंकि कामका सहज स्वभाव ही नयी-नयी भोग्य वस्तुओंमें सुखकी मृगतृष्णावत् प्रतीति होना है, अतः जिस राष्ट्रमें धर्म-हीन काम ही प्रधान लक्ष्य है, वहाँके स्त्री-पुरुषोंमें व्यभिचारका प्रसार स्वाभाविक बात है, जिसका परिणाम यह होगा कि राष्ट्रमें अन्तर्विवाद, पारस्परिक कलह, तनाव, प्रतारण आदि दोष सदा बने रहेंगे । इन दोषोंसे ग्रस्त राष्ट्र दूसरे राष्ट्रकी सम्पत्तिका

हरण अथवा बल्यत्कार और युद्धादिद्वारा पर-सम्पत्तिको आत्मसात् करनेकी कुचेष्टा किये बिना नहीं रह सकता। इस प्रकारकी दुश्चेष्टाओंके फलस्वरूप परस्परमें अविश्वास, संदेह और आशंकाका वातावरण बनकर युद्धको प्रोत्साहन मिलता रहेगा। जहाँ युद्धकी साज-सजा हुई, वहाँ राष्ट्रकी सुख-शान्ति, प्रेम, ज्ञान, विकास, राष्ट्रनिर्माण संस्कृतिप्रसार आदि सभी जन-कल्याण-कार्य अवरुद्ध हो जायेंगे। अतः युद्धके अवरोधकी दिशामें अग्रसर होनेके दृष्टि-बिन्दुसे भी मानवता महाव्रतका व्यावहारिक पालन परमावश्यक है।

दूसरोंपर अत्याचार कर जिस अर्थ-कामका उपार्जन आज किया जा रहा है, वह अल्पकालके लिये ऊपरसे सुख-समृद्धि साधन प्रतीत होता हुआ भी अन्ततः भीतरसे भीषण दुःख एवं विनाशके बीज-वपनका मूल-कारण बने बिना न रहेगा; क्योंकि स्थितिका लक्षण प्रेम-मूलक सत्त्वगुणमें है, द्वेष-मूलक तमोगुणमें नहीं। तमोगुणका परिणाम संहार होता है। इसलिये जो राष्ट्र अन्य राष्ट्रपर अत्याचार तथा द्वेष-मूलक बर्तावद्वारा केवल अपनी ही श्रीवृद्धि चाहता है, वह कथमपि चिरस्थायिनी शान्ति-समृद्धि एवं सुखको प्राप्त न कर सकेगा; क्योंकि भीषण युद्ध परिणामतः विजित-विजेता दोनों ही पक्षोंके लिये दुःखदायी होता है और उससे अन्तमें जो भयंकर बीमारियाँ, महामारियाँ, अभाव-दुर्भाव आदि विनाशक दोष फैलते हैं, उनका कुपरिणाम उनके साथ-साथ समग्र विश्वको भुगतना पड़ता है।

विश्व-युद्धमें प्रयुक्त भीषण शस्त्रास्त्रोंके परीक्षण, पूर्वाभ्यास एवं प्रयोगोंसे ब्रह्माण्डगत प्राणशक्तिकी समता बिगड़कर पञ्चमहाभूत विकृत हो जाते हैं, जिनका दुष्परिणाम देशमें ऋतु-विपर्यय, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी आदिके रूपमें प्रकट होता है। इससे विश्वकी सस्योत्पादिका एवं उत्तम संतानोत्पादिका

शक्ति भी नष्टप्राय हो जाती है। महर्षि वसिष्ठका वेदन है कि—

विराड्धातुविकारेण विषमस्पन्दनादिना ।
तदङ्गावयवस्यास्य जनजालस्य वैषमम् ॥
दुर्भिक्षावग्रहोत्पातमानयति

अर्थात् विराट्शरीरमें तत्त्वविकार, धातुविकार तथा प्राणशक्तिके विषम-स्पन्दनसे विराट्के अङ्गीभूत जीवोंकी प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न हो जाती है, जिससे जन-जीवन अनेक दैवी विपत्तियोंका केन्द्र बन जाता है। उपर्युक्त विकृति-विमिश्रित प्रकृतिके दोषोंसे बचनेके लिये विलासिता-की बीमारीसे दूर रहते हुए संयम और सदाचार-पालन-पूर्वक जीवन बितानेकी दिशामें आगे बढ़ना राष्ट्रकी तथा अपने निजकी महती सेवा है, जिसका सुफल जीवनभर मिलता रहता है। विलासिताका मूल है—
अवैधानिक (धर्महीन) अर्थ-कामका अविवेकागमित सेवन। उससे बचकर चरित्र-निर्माणकी पवित्र और सुखद दिशामें अग्रसर होनेको अवलम्बनरूप बीज प्रकारकी मानवता-मर्यादाएँ विहित की गयी हैं। इतिहास इसमें साक्षी है कि उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर आरूढ महान् राष्ट्रोंके पतन अथवा समूल विनाशमें विलासिता ही प्रधान कारण रही है। विलासिता १-कामचार, २-कामभक्ष, ३-कामवाद—इन तीन वस्तुओंमें व्यासजन्मवृत्ति (पर्याप्त रूप) से रहती है। इन तीनोंके द्वारा बढ़ी हुई दानवता मानवके जीवनक्षेत्र-को अपने निर्दय पदाघातोंसे बुरी तरह रौंदकर, कुचलकर दानवताका क्रीडा-प्राङ्गण बना देती है। इन तीनोंमेंसे कामचारका अर्थ है—यौन-उच्छृङ्खलता अथवा अपराध। यौन-अपराधोंके वृद्धिगत होनेसे—

पापरोगैश्च पीड्यन्ते यत्र त्वेते परिध्वंशाः ।
जायन्ते वर्णसंकरा राष्ट्रिकैः सह तद्ग्राष्टम् ।
क्षिप्रमेव विनश्यति स्थूलजिह्वाविचेतसः ।

—आदि कुफल मानव-समाजमें फैल जाते हैं। उनसे

स्थिर दाम्पत्यभावका अभाव होकर कर्मण्य, अनुशासन-प्रिय, नीरोग, दीर्घायु एवं सेवाप्रिय संतान उत्पन्न न होकर अकर्मण्य, अल्पायु, उच्छृङ्खल, सदा रोगी और देश-समाजद्रोही जन्तुविशेष उत्पन्न होते हैं, जो समाज एवं राष्ट्रके लिये सदा भारभूत बने रहते हैं।

कामभक्षसे तात्पर्य है—अभक्ष्य-भक्षण, अपेय-पान, अच्छिष्ट-भक्षण तथा मानवप्रकृतिके विरुद्ध मांस, अण्डादिका सेवन। अभक्ष्य-भक्षणसे मनुष्य निर्दयी, रोगी और आत्म-बलसे रहित हो जाते हैं। उनके हृदयसे मानवोचित मार्दव निकलकर उसके स्थानमें दानवोचित क्रूरता भर जाती है। ऐसा मानव न केवल मानव-समाजके अपितु प्राणिमात्रके लिये अभिशाप बन जाता है। क्रूर मानव ग्राम्य एवं आरण्यक पशुओंको निर्दयतापूर्वक अनेक अवर्णनीय बीभत्स त्रास देकर क्रूरतासे हनन करता हुआ उनके कतिपय वंशोंका समूल उच्छेद कर देता है।

कामवादका अर्थ है—वाणी-स्वातन्त्र्यके नामपर कुछ भी अर्थ-हीन अट-संट बकते रहना अथवा वाणीका निष्प्रयोजन अपव्यय करना। महर्षि वेदव्यासने इस हेतु दोषका वर्णन इस प्रकार किया है—

सभासदां च वृद्धानां सतां कथयतां कथाः ।
प्राहसन्नभ्यसूर्यं सर्ववृद्धान् गुणावराः ॥
वर्तयत्येव पितरि पुत्रः प्रभवते तथा ।
अमित्रभृत्यतां प्राप्य ख्यापयन्त्यनपत्रपाः ॥

उच्चैश्चाभ्यवदन् रात्रौ नीनैस्तत्राग्निरज्ज्वलत् ।
पुत्राः पितृनृत्यचरन् नार्यश्चात्यचरन् पतीन् ॥

अर्थात् कामवादके वशवर्ती मानव सभ्य, अनुभवी, नीतिविशारद शिष्ट पुरुषोंके ठोस उपदेशसे लाभ उठानेके बजाय उनकी हँसी उड़ाया करते हैं। पति और पिताको डाँटना कामवादी स्त्री-पुरुषोंका स्वभाव बन जाता है। वे शत्रुसे मिलकर देश-द्रोह करने अथवा परम्परागत समाज-मर्यादाओंको तोड़नेके महापापमें भी संकोच नहीं करते।

विजसिताके उपर्युक्त तीन अवगुणरूप अङ्गोंसे समाज और राष्ट्रको बचाने तथा उसे 'नीतिमान् धार्मिको वाग्मी' बनानेके विचारसे भी मानवताविधायक मर्यादाओंके प्रसारकी बड़ी आवश्यकता है। उक्त व्रतोंके व्यावहारिक पाठनको बाराहपुराणने भगवान्की वास्तविक पूजाका विशेषण देकर इनका महत्त्व बढ़ाया है तो पद्ममहापुराणने इन व्रतोंको 'भगवत्पूजाके उज्ज्वल पुष्प' कहकर उनका गौरवगान किया है।

'ऐतरेय आरण्यक' के 'पूर्वेनात्थायन् येऽत्यायन् ते परावभूवुः' इस वाक्य-रत्नके अनुसार यह सुनिश्चित है कि जिन जातियों अथवा राष्ट्रोंके जीवनमेंसे उपर्युक्त मानवता-महाव्रत निकल गये, वे अतीतमें सदैव पराभूत हुए हैं और भविष्यमें भी प्रताडित-पराजित हुए बिना न रहेंगे।

भगवान्की दिव्य ज्योति मेरे अंदर प्रकट हो गयी है

मेरे जीवनमें भगवान्की ज्योतिका नित्य परम प्रकाश हो गया है, इससे भोगवासनाका एवं भोगोंका बोर अन्धकार सदाके लिये नष्ट हो गया है। अब मुझे सदा सर्वत्र केवल भगवान्के ही दर्शन होते हैं, भगवान्का ही स्पर्श प्राप्त होता है और मेरा प्रत्येक विचार, प्रत्येक कर्म केवल भगवान्की सेवाके रूपमें ही होता है; क्योंकि भगवान्की दिव्य ज्योति मेरे अंदर प्रकट हो गयी है।

पागलकी शैली

[भारत नारी]

(लेखक—महात्मा श्रीश्रीसीतारामदास ँकारनाथजी महाराज)

पागल अपने मनसे 'राम राम' जप रहे हैं, कभी हँसते हैं, कभी नाचते हैं। कभी सुर भरकर गाते हैं, 'राम राम राम जय राम-राम राम'

इसी समय वह बहिन आकर प्रणाम करती हैं। बाबा, मैं आपको प्रणाम करती हूँ। (प्रणाम)

पागल—राम-राम सीताराम। मैं भी माई लोगोंको प्रणाम करता हूँ। (प्रणाम) माई लोग अच्छी तरहसे हैं न ? राम-राम सीताराम।

प्रथमा—हाँ बाबा, आपकी कृपासे हम अच्छी तरहसे हैं।

पागल—राम-राम सीताराम (तृतीया शिक्षिताके प्रति)। माई, तुम पति-पूजा तो करती हो न ?

तृतीया—हाँ बाबा, आपकी कृपासे मेरा नया जन्म हुआ है। मैंने पतिको नारायणरूपमें पाया है। परिवारमें सभी सुखीहो गये हैं। नारायण समझकर पतिकी सेवा करनेमें इतना आनन्द है, यह मैं नहीं जानती थी। मेरा शिक्षाका गर्व दूर हो गया है, आपके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम।

द्वितीया—बाबा, आप हमको कर्तव्यका उपदेश दीजिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय जय राम सीताराम। केकय राजाकी पुत्री सुमनाने देवलोकमें सर्वतत्त्वमयी सर्वश शाण्डिलीसे पूछा था*—'कल्याणि ! आपने किस साधना या सदाचारके प्रभावसे सारे पापोंको नष्ट करके स्वर्ग प्राप्त किया है। आप अपने तेजसे अग्निके समान प्रदीप्त हो रही हैं और चन्द्रकी कन्याके समान उज्ज्वल प्रभासे प्रकाशित होकर स्वर्गमें पधारी हैं।' राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम। 'निर्मल वस्त्र धारण करके क्लान्तिविहीन होकर विमानपर बैठी हैं। आप तेजसे सहस्रगुना सुशोभित हो रही हैं। आप थोड़ी तपस्या, थोड़े नियम या थोड़े दानके द्वारा स्वर्गलोकमें नहीं आयी हैं। अपनी साधनाकी बात मुझको बतलाइये।' राम राम सीताराम। सुमनाकी बात सुनकर शाण्डिलीने कहा—'देवि ! मैंने काषाय वस्त्र नहीं

धारण किया, वल्कल नहीं पहना, सिर नहीं मुड़वाया, बड़ी-बड़ी जटाएँ नहीं रक्खीं, यह सब करके मैं देवलोकमें नहीं आयी हूँ।' राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम। 'मैं सतत सावधान रहती थी। कभी पति-देवताके प्रति अहितकर कठोर वचन मैंने नहीं कहे। मैं सदा सास-ससुरकी आज्ञाके अनुसार चलती हुई देवता-पितर और ब्राह्मणोंकी पूजा सावधानीसे करती थी। मैं दुष्टता नहीं करती थी, दुष्टता मेरे मनमें ही नहीं आयी। मैं घरका द्वार छोड़कर अन्यत्र कहीं खड़ी नहीं होती थी। किसीके साथ बहुत देर तक बात नहीं करती थी। मैं एकान्तमें या सबके सामने कभी किसीके साथ अश्लील परिहास नहीं करती थी। मेरे किसी कार्यके द्वारा कभी किसीका किसी प्रकार अनिष्ट नहीं हुआ। यदि मेरे पतिदेव किसी कार्यसे बाहर जाकर लौटते तो मैं उनके बैठनेके लिये आसन देती और एकाग्रचित्तसे उनकी पूजा करती।' राम राम सीताराम जय जय राम सीताराम। 'मेरे पतिदेव जो भोजन पसंद नहीं करते और जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय आदि नहीं चाहते, मैं भी उन सबका त्याग कर देती।' राम राम सीताराम—'सुनती हो माई', राम राम।

प्रथमा—हाँ बाबा, हमलोगोंको खूब अच्छा लगता है ! उसके बाद उन्होंने क्या कहा ?

पागल—राम-राम सीताराम। 'पारिवारिक कार्य जो उपस्थित होता, उसे मैं सबेरे उठकर स्वयं करती और कराती। मैं अग्निहोत्रकी रक्षा करती और घर लीप-पोतकर शुद्ध रखती। प्रतिदिन बच्चोंका पालन करती और कन्याओंको नारीधर्मकी शिक्षा देती। अपनी प्रिय खाद्य सामग्री छोड़कर गर्भरक्षामें सतत संलग्न रहती। पुत्र-पुत्रीके ऊपर क्रोध करना उनको गाली देना अथवा मारना मैंने छोड़ रक्खा था। मेरे घरमें कभी अन्न बिखरा नहीं रहता। मैं अन्नकी यत्नपूर्वक रक्षा करती। मैं गायोंको घास-भूसी खिलाकर पानी पिलाकर तृप्त करती थी और रत्नके समान सुरक्षित रखना चाहती थी तथा पवित्रतापूर्वक आगे बढ़कर ब्राह्मण आदिको भिक्षा देती थी।' राम-राम सीताराम। सुनती हो माई लोग !

द्वितीया—हाँ बाबा, आप कहते चढ़ें।

पागल—राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम । पतिके विदेश जानेपर मैं आँखोंमें काजल नहीं लगाती । रूपालमें गोरोचनका तिलक नहीं देती । तेल लगाकर स्नान करना, फूलोंकी माला पहनना, अङ्गमें अङ्गराग लगाना और शृङ्गार करना मैं पसंद नहीं करती थी । जब वे सुखसे सोते तब मैं अति आवश्यक कार्य होनेपर भी उन्हें कभी जगाती नहीं । इससे मेरा मन अत्यन्त संतुष्ट रहता था । परिवारके लोगोंके पालन-पोषणके लिये भी मैं कभी पतिको कष्ट नहीं देती थी । घरकी गुप्त बात सर्वदा लिपाये रखती । घर-द्वार, आँगन सदा बुहारकर लीप-पोतकर स्वच्छ रखती ।' राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम । 'जो स्त्री सर्वदा वावधान होकर इस धर्ममार्गका पालन करती है वह नारियोंमें अरुन्धतीके समान आदरणीया बनती है और स्वर्गलोकमें विशेषरूपसे पूजित होती है ।' राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम । सुनती हो माई लोग ! राम राम सीताराम ।

तृतीया—बाबा, हमने आज बहुत-सी नयी बातें सुनीं । माता-पिता, पति, श्वशुरके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है, यह तो आपने कभी नहीं बतलाया । हमको क्या करना उचित है, क्या करना ठीक नहीं है—यह हम नहीं जानतीं । अपने मनके अनुसार चलती हैं । अंग्रेजी शिक्षासे पुरुषोंके समान अधिकारकी माँग करती हैं, भीतर ही भीतर जलती रहती हैं । गान्तिका लेश भी हमें कभी प्राप्त नहीं होता ।

पागल—राम-राम सीताराम । ठीक कहती हो माँ ! माता-पिता पुत्र-पुत्रीको उनके कर्त्तव्यकी शिक्षा नहीं देते । इसीके फलस्वरूप वे आगमें जल रहे हैं । राम-राम सीताराम ।

चतुर्थी—आप यह बतलायें कि हमारा क्या कर्त्तव्य है !

पागल—'राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।' भगवान् शङ्करने माता पार्वतीसे नारी-धर्मके सम्बन्धमें पूछा । माँ जगज्जननीने सरस्वती, विषाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, शतद्रु, देविका, सिन्धु, कौशिकी, गोदावरी, यमुना, नर्मदा और गङ्गा आदि मूर्त्तिमती नदियोंके प्रति स्त्रीधर्मका वर्णन किया था । 'राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।' 'जो स्वभावतः कथा-वार्ता सुनती है, आचरण उत्तम रखती है उस माँको देखकर पतिदेवता सुखी होते हैं । जो अपने पतिके सिवा और किसी पुरुषमें मन नहीं लगाती और सदा

स्वामीके सामने प्रसन्न-मुख रहती हैं, वे ही नारी धर्मचारिणी हैं । जो नारी सर्वदा अपने स्वामीको देव-तुल्य देखती है, वे ही धर्मपरायणा नारी धर्मके फलको पाती हैं । जो पतिकी देवताके समान सेवा-परिचर्या करती हैं, पतिके सिवा और किसीके साथ कभी व्यग्र नहीं होतीं तथा उत्तम व्रतका पालन करती हैं । जो पुत्रके मुखके समान सदा स्वामीका मुख देखती हैं, जो नियमित आहार करती हैं, वे धर्मचारिणी हैं ।' राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।

द्वितीया—नियमित आहार क्या है बाबा !

पागल—राम-राम सीताराम । पतिके भोजनके बाद पतिका प्रसाद ग्रहण करना ही नियमित आहार है । अपनी जीभके लिये तृप्तिकारक पदार्थ, पतिको भोजन कराये बिना स्वयं भोजन करना नारीका कर्त्तव्य नहीं है । 'राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।' पति और पत्नीका एक साथ रहकर धर्माचरण करना उचित है । इस मङ्गलमय दाम्पत्य-धर्मको सुनकर जो स्त्री धर्मपरायणा होती है, वह पतिके समान व्रतचारिणी है । पतिव्रता, साध्वी स्त्री सदा अपने स्वामीको देवताके समान देखती हैं । पत्नीका पतिके साथ-साथ रहकर धर्माचरण करना परम मङ्गलमय है । जो अनुरागवश पतिके अधीन रहती हैं, चित्त प्रसन्न रखती हैं, देवताके समान पतिकी सेवा और परिचर्या करती हैं, जो उत्तम व्रतका आचरण करती हैं, पतिकी प्रीतिके लिये सुन्दर वेश धारण करती हैं, वे पतिमें अनन्यचिन्ता, प्रसन्नवदना रमणी धर्मचारिणी हैं ।' 'राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम ।'

द्वितीया—पतिकी प्रीतिके लिये सुन्दर वेश धारण करनेका क्या अभिप्राय है बाबा !

पागल—'राम राम सीताराम'पति उसकें सुन्दर वेशको देखकर आनन्दित होंगे, इसीलिये माइयोंको वेशभूषा धारण करना चाहिये, मैं सुन्दर दिखलायी दूँगी या दूसरा मेरा शृङ्गार देखकर मेरी ओर आकर्षित होगा, इसके लिये नहीं । इसके लिये शृङ्गार किया जाता है तो अधःपतन होता है । 'राम राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।' सुनो—पतिके कर्कश शब्द बोलने या दोषभरी दृष्टिसे देखनेपर भी जो माई प्रसन्न-मुख रहती हैं, वे पतिव्रता हैं । जो सुन्दरी पतिके सिवा पुरुषनामधारी चन्द्र-सूर्य या किसी वृक्षको भी नहीं देखती, वह व्रतधर्मका पालन करनेवाली है । 'राम राम सीताराम ।'

द्वितीया—पुरुषनामधारी चन्द्र-सूर्य अथवा किसी वृक्षको भी न देखना—यह तो बहुत कठिन बात है बाबा !

पागल—‘राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।’ इस बातके कहनेका उद्देश्य इतना ही है कि पुरुष मात्रको देखना नारीका कर्तव्य नहीं है। चन्द्र-सूर्य देवता तथा अचल वृक्षके दर्शनका निषेध करके उसी भावको दृढ़ किया गया है। ‘राम राम सीताराम’ जो नारी अपने दरिद्र, रोगी, दीन अथवा थके-माँदे पतिकी पुत्रवत् सेवा करती हैं, वे धर्मफलकी भागिनी होती हैं। जो नारी संयममें रहनेवाली, कार्यनिपुण, पुत्रवती, पति-प्रिया, पतिप्राणा होती हैं, वे धर्मभागिनी हैं। जो प्रसन्नचित्तसे सदा पतिकी सेवा-शुश्रूषा करती हैं, पतिके ऊपर पूर्ण विश्वास रखती हैं, जो विनीत हैं, वे ही धर्मभागिनी होती हैं। जिनके हृदयमें पतिके लिये जैसी सृष्टि होती है, वैसी काम-भोग, सुख-ऐश्वर्यके लिये नहीं होती। ऐसी ही पतिव्रता धर्मभागिनी होती हैं। जिनको प्रातःकाल उठना रुचिकर होता है, जो सबेरे उठकर घरके काम-काज करती हैं, घर बुहारकर गोबरसे लीपती हैं, पतिके साथ नित्य अग्निहोत्र किया करती हैं, देवताओंकी पुष्प और नैवेद्य आदिके द्वारा पूजा करती हैं, जो देवता, अतिथि, भृत्य और आश्रितजन तथा पतिको भोजन करानेके बाद विधिपूर्वक शेष अन्नको ग्रहण करती हैं तथा आश्रितजनको दृष्ट-पुष्ट और संतुष्ट रखती हैं, वे ही सतीधर्मसे सम्पन्न हैं। जो उत्तम गुणयुक्त होकर सदा सास-ससुरकी चरण-सेवा करती हैं, वे ही नारी तपस्वरूप धर्म-विशिष्ट हैं। जो ब्राह्मण, दुर्बल, अनाथ, दीन, अन्ध, कङ्कालको अन्न देकर भरण-पोषण करती हैं, वे पतिव्रता-धर्मकी फलभागिनी होती हैं। जो प्रतिदिन शीघ्रतापूर्वक मर्यादाके अन्तर्गत रहते हुए दुश्चर्यतका पालन करती हैं, जो पतिके चित्तका अनुसरण करती हुई पतिके हित-चिन्तनमें रत रहती हैं, वे पातिव्रतधर्मके पालनके सुखको प्राप्त करती हैं। पातिव्रत-धर्मका पालन करते हुए पतिके सेवामें मग्न रहना ही उनका परम पुण्य, महान् तप है तथा सनातनधर्मका साधन है। नारीका पति ही देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गति है। नारीकी पतिके सिवा अन्य गति नहीं है। पतिकी प्रसन्नता एक ओर हो तथा

स्वर्ग दूसरी ओर हो, तो वह स्वर्ग क्या उसके तुल्य होगा ! ‘राम राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।’ पार्वती कहती हैं—‘हे महेश्वर ! मैं आपको अप्रसन्न करके स्वर्ग भी नहीं चाहती। पति दरिद्र, रोगी, विपद्ग्रस्त तथा शत्रुओंसे घिरा हुआ हो, अथवा ब्रह्मशापग्रस्त हो। वैसी अवस्थामें भी यदि अकार्य, अकर्म अथवा प्राण-त्यागका भी आदेश दे तो उसे आपत्कालका धर्म समझकर निःशङ्क चित्तसे तत्काल करे। इस प्रकार जो स्त्रियाँ धर्म पालन करती हैं, वे पातिव्रत धर्मकी फलभागिनी होती हैं।’ राम राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।

तृतीया—यह सुनकर शिवजीने क्या कहा ?

पागल—‘राम राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।’ भगवान् शङ्करने यह सुनकर गिरिराजकुमारीका आदर्श किया। जो आये थे, उनको जानेकी अनुमति दी। समस्त भूतगण, सारी नदियाँ, अप्सराएँ तथा गन्धर्ववृन्दने सिंहाकाकर भगवान् शङ्करको प्रणाम किया* और सब अपने अपने स्थानको चले गये। ‘राम राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।’ सुन ली माई लोगोंने जगन्माता पार्वतीकी बात ! ‘राम राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।’

द्वितीया—माँ भगवतीकी बात सुनकर प्राण भर गये बाबा ! आप आशीर्वाद दें जिससे हम नारी-धर्मका पालन करनेमें समर्थ हों।

पागल—‘राम राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।’ माँ, तुमलोग इस युगमें नारीगणको यथार्थ मार्ग दिखलाकर उनके इहलोक और परलोकको मङ्गलमय बनाओ। जो नारी पतिव्रता सती होती हैं, माँ जगज्जननी शङ्करी उसको हृदयसे लगाकर सदा रक्षा करती हैं। तुमलोग निर्भय होकर पातिव्रत-धर्मका आचरण करो। मेरी दशभुजा माँ अपनी दश भुजाओंमें प्रहरण लेकर तुम्हारी सदा सर्वदा निःशयपूर्वक रक्षा करेंगी। माँ, जागो, जागो, जागो; उठो सती-धर्मके पुण्य आलोकमें, पुनः भारत आलोकित हो उठे।

पागल ‘राम राम सीताराम’ बोलकर ताली बजा-बजाकर नाचने लगे।

भारतीय समाज और साहित्यपर रामके व्यक्तित्वका व्यापक प्रभाव

(लेखक—श्रीरघुवीरशरणजी अग्रवाल, एम० ए०, बी० एड्)

सर्वप्रथम यह विचारणीय है कि रामके व्यक्तित्वकी वे कौन-सी मूलभूत विशेषताएँ हैं जो वाल्मीकिसे तुलसीतक भारतीय समाज और साहित्यको व्यापकरूपसे प्रभावित करती हैं ?

भादिकवि महर्षि वाल्मीकिने अपने आदिकाव्य रामायणमें भगवान् रामके जिस विशिष्ट व्यक्तित्वके संदर्भमें उनके जिस आदर्श महापुरुष एवं क्षत्रिय-रूपका चित्रण किया है, इसको देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वाल्मीकि-द्वारा रामायण रचने जानेके पूर्व भी रामके व्यक्तित्वको मौखिकरूपसे लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी होगी, अन्यथा वाल्मीकि इतना परिपूर्ण चित्र उपस्थित न कर पाते। अवश्य ही उन्होंने लोकाराधित रामको साहित्यिक शैलीमें आदर्श व्यक्तित्व प्रदान किया है। इसकी पुष्टि इस कथनसे भी हो जाती है कि वाल्मीकि-पूर्ववर्ती कालमें ही इक्ष्वाकु-वंशके सत्तों एवं काव्योपजीवी कुशीलवोंके द्वारा रामचरित्र मौखिकरूपसे तत्कालीन जन-समाजमें प्रसिद्ध हो गया था।

अनेक भारतीय विद्वानोंने रामको वाल्मीकिके समयमें विद्यमान माना है। अतः वाल्मीकिद्वारा रामका चित्रण विश्वसनीय और सत्यपरक हो सकता है। भगवान् रामने युगपुरुष होनेके कारण उस समयके समाज और साहित्य-दोनोंपर जो प्रभाव डाला, उसकी परम्परागत प्रतिक्रिया तुलसीदासके समयतक भी होती रही और रामका व्यक्तित्व उत्तरोत्तर विकसित और खूबगन्वित होता हुआ लोकप्रिय होता गया।

अतः रामका विशिष्ट व्यक्तित्व रामके विशिष्ट नामों, रूपों, लीलाओं और धामोंके महत्त्वका रूप ग्रहण करता हुआ प्राचीन कालसे आधुनिक युगतक भारतीय समाज और साहित्यपर अपनी अमिट छाप लगा चुका है।

रामके व्यक्तित्वका—‘सत्यं शिवं सुन्दरम्’ का आदर्श भारतीय समाज और साहित्यमें ज्ञानयोग, कर्मयोग और पक्तियोगकी वृद्धि करता रहा है। रामका वीरोचित, उदात्त, अन्याय-विरोधी, धर्मसंस्थापनार्थी और लोकसंग्रही रूप असत्यके विरुद्ध सत्यकी, अन्यायके विरुद्ध न्यायकी, पाशविकताके विरुद्ध देवत्वकी, अधर्मके विरुद्ध धर्मकी,

पराधीनताके विरुद्ध स्वाधीनताकी, पतनके विरुद्ध उत्कर्षकी और पराजयके विरुद्ध विजयकी क्षमता थी।

ज्यों-ज्यों राम-चरित्रका विकास होता गया, भारतीय जनताको आत्मविश्वास और आत्म-गौरवके साथ सबल आधार, नैतिकता एवं शान्तिकी प्राप्ति होती गयी, जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज और साहित्य राममय हो गया।

रामके मधुर स्वभाव, बल-वीर्य और अद्भुत रूपने भारतीय जीवनको प्राणवन्त कर दिया। रामका परात्पर ब्रह्मरूप, महाविष्णु-रूप और मर्यादापुरुषोत्तम-रूप इतना लोकप्रिय हो गया कि भारतीय समाजका जीवन अनेक प्रकारके आदर्शोंसे जगमगा उठा। रामके आदर्श चरित्रसे नयी आशा, नयी प्रेरणा और नयी स्फूर्ति प्राप्त होनेके कारण भारतीय समाज एवं साहित्य श्रेय-प्रेयकी लोक-परलोक-सुख दायिनी भावनासे ओत-प्रोत हो गया।

सुर-रंजन भंजन दनुज हरण मूमि-अव-भार।

साधु भक्त श्रुति धर्म हित, हुआ राम अवतार ॥

इस मान्यताकी समाज-व्यापी भावनाने भी विशेष प्रभाव डाला। इस प्रकार रामका मानवीय और अतिमानवीय रूप भारतीय समाजमें लोकसंग्रहकी भावनाने दृढ़ करता रहा और यहाँकी साहित्य-सरिताको विशद, निर्मल और ललित बनाता गया। वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास, भवभूति, तुलसी आदिके द्वारा चित्रित रामके व्यक्तित्वको महान्से महत्तम रूपकी प्राप्ति होती गयी।

राम-चरित्रकी पवित्र भागीरथीके पावन जलसे, जिसने भी अपनी वाणी और हृदयको प्रक्षालित किया, उसी व्यक्तिका साहित्य और जीवन सुखमय, शान्तिमय, आनन्दमय और मङ्गलमय हो गया। रामके व्यक्तित्वके व्यापक प्रभावका फल निम्नाङ्कित भी है—

जन्म मृत्युमें राम हैं, अमिवादनमें राम।

नाम हमारे राममय, जीवन-लीला राम ॥

समुद्रके समान गम्भीर, पर्वतराज हिमालयके समान धीर, विष्णुके समान महाबली, चन्द्रमाके समान प्रियदर्शी, कालानलके समान क्रोधी, पृथ्वीके समान क्षमाशील, श्रुति

एवं लोकधर्मके रक्षक तथा पालक मर्यादापुरुषोत्तम और 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' श्रीरामका चरित्र यदि भारतीय समाज और साहित्यपर अपना व्यापक प्रभाव न डालेगा तो फिर ऐसा कौन महामानव या अतिमानव है जो वाल्मीकि और तुलसीके रामकी समता कर सके ?

भारतीय समाजका धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन अति प्राचीन कालसे अद्यावधि रामचरित्रके उच्च आदर्शोंसे अनुप्राणित होता रहा है। इस अवधिमें भारतीय समाजने अनेक राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन देखे; परंतु उसके हृदयपर लोकसंग्रही और मर्यादापुरुषोत्तम रामका प्रभाव अधिकाधिक होता गया। परिणामतः रामका जीवनादर्श भारतीय समाजका जीवनादर्श बन गया, जिसमें उसने अपनी सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षा, वर्णाश्रम-धर्मकी पुनः स्थापना एवं जीवनकी मङ्गलाशा देखी।

रामके मर्यादापूर्ण, संयत, भक्तवत्सल, करुणायतन और महावीर्यपूर्ण चरित्र तथा उच्च नैतिक आदर्शोंसे प्रभावित होकर भारतीय साहित्यने लोक-जीवनको पवित्र, ज्योतिर्मय तथा कल्याणकारी बनाने तथा राम-भक्तिद्वारा परमानन्द प्राप्त करनेका अमर संदेश सुनाया और तुलसी-दासने कह भी दिया—

कै तोहि लागहि राम प्रिय, कै तू प्रमु प्रिय होहि ।

हुइ महँ रुचै जो सुगम सो, कीजे तुलसी तोहि ॥

रामके व्यापक प्रभावका यह भी कारण है कि वे आधिभौतिकरूपसे अप्रतिम पराक्रमी योद्धा हैं, आधिदैविक-रूपसे अद्भुत शील, शक्ति और सौन्दर्ययुक्त सुराकार हैं और आध्यात्मिक दृष्टिसे सगुण परमात्मा हैं।

रामके सर्वप्रिय होनेका दूसरा कारण पौराणिकोंका यह मत है कि राम वे आदिपुरुष परब्रह्म हैं, जिनके सत्त्वगुणसे देवगण, रजोगुणसे प्रजापतिगण और तमोगुणसे रुद्रगण उत्पन्न हुए।

कहना न होगा कि वाल्मीकिने रामके व्यक्तित्वको मानवसे ऊपर उठाकर महापुरुषत्वपर स्थित किया। व्यास, भास और कालिदासमें रामका विष्णुत्व सुस्तर है। भवभूतिने उन्हें शौर्ययुक्त और कारुणिक चित्रित किया और तुलसीके राम अद्भुत शील, शक्ति, सौन्दर्ययुक्त परमाराध्य, नराकार मर्यादापुरुषोत्तम, सगुण विश्वात्मा और परात्पर तत्त्व हैं।

राम अपने उक्त विशिष्ट व्यक्तित्वके कारण ही भारतीय समाज और साहित्यपर इतना व्यापक प्रभाव डाल सके हैं कि कोई समाज-शास्त्री तथा कवि या साहित्यकार उस प्रभावका पूर्णतया निरूपण नहीं कर सका है। रामका चरित्र सगुण ईश्वरकी मानवी तथा अतिमानवी लीलाओंका वह रत्नाकर है कि जिसका मूल्याङ्कन कोई बिरला ही परखी कर सकता है।

प्रत्येक समाज और साहित्यका 'असतो मा सद्गमय', 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का लक्ष्य रहता है, जिससे मानव बाह्यजगत् एवं हृदयमें ज्ञानका प्रकाश प्राप्त कर सके।

इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिये रामके परम भक्त गोस्वामी तुलसीदासजीका यह सत्परामर्श माननीय है—

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरीद्वार ।

तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जौ चाहसि उजियार ॥

सारांश यह कि रामके उक्त विशिष्ट व्यक्तित्वके कारण ही रामके चरित्रको भारतीय समाज एवं साहित्यमें अशांतीत मान्यता एवं व्यापकता प्राप्त होती रही और अनुमान है कि रामका महत्त्व भविष्यमें और भी अधिक व्यापक एवं मान्य होगा। इसका प्रमाण प्रतिवर्ष मनाये जानेवाले देशव्यापी विजयदशमी और रामनवमीके पर्व हैं। दीपावलीका पर्व भी रामके राज्याभिषेकके प्रतीकस्वरूप मनाया जाता है। भारतके हजारों धर्मप्रिय आबाल-वृद्ध नर-नारी राम-लीलामें सक्रिय भाग लेते हैं और दर्शक तो लाखोंकी संख्यामें राम-लीला देखते हैं। इसीलिये रामका आदर्श चरित्र भारतीय समाज और साहित्यमें शीर्षासन प्राप्त किये हुए है। रामके व्यक्तित्वका महत्त्व विदेशोंमें भी कुछ कम नहीं है; क्योंकि अनेक विदेशी मनीषियोंने भी राम-साहित्यकी अभिवृद्धिमें योग दिया है और रामके मर्यादापूर्ण आदर्शोंकी मुक्तकण्ठसे सराहना की है।

अतः भगवान् श्रीरामचन्द्रजी—भक्तिके आदर्श, मर्यादाके प्रतीक, सद्गर्भ एवं सदाचारके संस्थापक, ज्ञान, वैराग्य, न्याय, नीति, त्याग, कर्मण्यता आदिकी मूर्ति और निर्बलके बल माने जाते हैं। रामका महान् व्यक्तित्व ही उन्हें भारतीय समाज और साहित्यका उच्च आदर्श सिद्ध कर देता है।



भाव-संशुद्धि

(लेखक—विद्यामार्तण्ड डा० मङ्गलदेवशास्त्रीजी)

भाव-संशुद्धि चारित्र्यका मुख्य अङ्ग है। भाव-संशुद्धिकी क्यों आवश्यकता है ? इसीका उत्तर नीचेके पद्योंमें दिया गया है—

गृहरूपं मनोऽस्माकं स्वच्छं शान्तं भवेद्यथा ।
तत्परेण मनुष्येण प्रयत्नः क्रियतां तथा ॥

हमारा मन एक प्रकारसे हमारा घर है। वह हमारा गृहरूपी मन जैसे भी स्वच्छ और शान्त रह सके, उसके लिये हमें तत्पर होकर प्रयत्न करना चाहिये।

सोपद्रवं तथास्वच्छं दुर्गन्धेन समाचितम् ।
अभद्रदर्शनं वेदमाभ्युषितः कः सुखं व्रजेत् ॥
भावसंशुद्धिमेतस्मात् सौमनस्यं तथैव च ।
अद्विचारसमृद्धिं च समीहन्ते मनीषिणः ॥

उपद्रव या कोलहलसे युक्त, अस्वच्छ, दुर्गन्धसे भरे हुए और देखनेमें अभद्र या भदे घरमें रहकर कौन सुखी हो सकता है ? इसीसे मनीषीलोग भाव-संशुद्धि, सौमनस्य और सद्विचारोंकी समृद्धिको चाहते हैं।

अभिप्राय यह है कि स्वास्थ्य और प्रसन्नताके लिये

जैसे शान्त, स्वच्छ और सुन्दर घरकी आवश्यकता होती है, उसी तरह आध्यात्मिक शान्ति और प्रसन्नताके लिये भावसंशुद्धि आदि मानसिक गुणोंकी आवश्यकता है।

स एष परमः स्वार्थो दोषसंस्पर्शवर्जितः ।
परार्थजीवनस्यापि पात्रता तत्र जायते ॥

भाव-संशुद्धि आदि उपर्युक्त मानसिक गुणोंकी प्राप्ति ऐसा उत्कृष्ट 'स्वार्थ' है जिसके साथ दोषका संस्पर्श भी नहीं है। इस स्वार्थ-सिद्धिके हो जानेपर ही मनुष्यमें परार्थ-जीवनकी पात्रता आती है। अर्थात् उक्त उदात्त गुणोंसे युक्त मनुष्यमें ही वास्तवमें दूसरोंके हितके लिये कार्य करनेकी योग्यता होती है।

वस्तुतस्तत्पदं पुण्यं यत्र स्वार्थपरार्थयोः ।
एकत्वं जायतेऽद्वैतं तदेवाहुर्विचक्षणाः ॥

वास्तवमें मनुष्यके चरित्रकी वही स्थिति पवित्र और उत्कृष्ट होती है जिसमें स्वार्थ और परार्थकी एकता या अभिन्नता हो जाती है। विद्वान्लोग उसी अवस्थाको 'अद्वैत'की स्थिति कहते हैं।

पश्चिमकी तड़क-भड़कमें भूलकर अपने मूल आधारको न छोड़ें

पश्चिमसे आपके पास जो तड़क-भड़क आती है उससे आप चौंधिया न जायें। इस क्षणिक दिखाव के मोहमें फँसकर आप अपने मूल आधारको न छोड़ें, जिसपर आप खड़े हैं। बुद्ध भगवान् ने कभी न भुलाये जाने लायक शब्दोंमें आपसे कहा है कि यह अल्प मानव-जीवन अनित्य छायाके सिवा, क्षणभरमें उड़ जानेवाली वस्तुके सिवा और कुछ नहीं है। और अगर आप अपनी आँखोंके सामने सतत बदलते रहनेवाले इस पार्थिव शरीरकी क्षणभंगुरताको पहचान लें तो ऊपर स्वर्गमें आपके लिये सुख और शान्तिका भंडार भरा रहेगा और यहाँ इस जगत्में आपको ऐसी शान्ति मिलेगी जो हमारी समझसे परे है और ऐसा सुख प्राप्त होगा जिससे हम बिल्कुल अपरिचित हैं। यह तभी होगा जब आपमें आश्चर्यजनक अज्ञा, दिव्य अज्ञा होगी और आप सारी दृश्य वस्तुओंका त्याग कर देंगे। (राष्ट्रभारती)

— महात्मा गांधी

मधुर

बीगोपी-प्रेमकी अमित महिमा है, उसमें त्याग-ही-
त्याग है। अपनेमें हीनताका बोध तथा प्रियतम श्रीकृष्णमें
अनन्त महत्त्वके दर्शन उसके सहज लक्षण हैं। इसीके
अनुरूप श्रीकृष्ण भी इसी भावसे उनसे लीलाविहार करते
हैं। श्रीराधारानी कहती हैं—

इयामसुन्दर ! तुम्हारा प्रेम बड़ा ही विलक्षण है।
तुमने अपने सहज सुन्दर स्वभावके विवश होकर ही मुझसे
प्रेम बढ़ाया है। मेरा हृदय तो स्वार्थ (निज सुखकी
इच्छा) से भरा था, प्रेमके तो नामसे ही शून्य था,
कामनाके कलुषसे पूर्ण सदा काल था, पर तुमने (अपने
स्वभाववश ही) स्वयं आकर उसमें विश्राम किया। मैंने
तो कभी प्रेमकी प्राथमिक पाठशाला में भी प्रवेश नहीं
किया, न मेरा प्रेमका ककहरा सीखनेसे ही कुछ काम
 रहा। प्यारे रसधाम ! तुमने अपने-आप ही आकर मुझे
अपने दिव्य (भौतिक नहीं) प्रेमरसका पान कराया;
मैं उससे छक गयी। सबको पवित्र करनेवाला वह मधुर
प्रेमरस (मुझमें समाया नहीं) छलक पड़ा। मेरा जीवन
सुखका धाम बन गया। (प्रियतम !) तुम्हारे सुगन्धित
गुण-समूह-पुष्पोंके तुम ही नित्य सुन्दर बगीचे हो !

(गीत)

अनोखौ प्रेम तिहारो स्याम !
बिजु कारन तुम नेह बढ़ायौ
सहज सुभाव बिबस अभिराम ॥
ब्यारख भरयौ हतौ हिय मेरो,
छूँछौ सदा प्रेमके नाम।
काम-कलुष पूरित, नित कारौ,
ता मैं कियौ आय बिस्राम ॥
नहीं प्रवेश प्रेम-चटसारै,
नहीं ककहरा सौं हू काम।
दिव्य प्रीति-रस मोय पियायौ
अपने-आप आय रसधाम ॥
छकी, प्रेम-रस छलक्यौ पावन
मधुर भयौ जीवन सुखधाम।
तुम्हारे सुरमित गुन-सुभनोंके
तुम ही नित्य सुभग आराम ॥

प्रियतम श्रीकृष्णने कहा—

‘प्रियतमे ! विशुद्ध प्रेम यों ही बोला करता है।
(प्रेमकी यही भाषा है) प्रेम सदा ही अपने लाख-लाख
दोषोंको तथा प्रियतमके लाख-लाख विमल गुणोंको प्रकट
करके उनकी तुलना किया करता है। प्रेमी नित्य-निरन्तर
प्रेम-रस-सुधासे छका जगत्में उन्मत्त हुआ विचरण
करता है। वह अमूल्य प्रेम-रत्न धन पा चुकता है तथापि
(प्रेमके स्वभाववश) उसे अपना हृदय प्रेमरससे सदा
शून्य ही दिखायी देता है; क्योंकि प्रेमकी पवित्र पिपासा
नित्य बढ़ती तथा प्रेमके अभावका बढ़ता हुआ प्रवाह
दिखलाती रहती है। ऐसा प्रेमधनी धन्य-धन्य है, जो नित्य
नवीन प्रेमका खजाना खोलता रहता है और मुझे परम
सुख पहुँचानेके लिये ही नित्य अत्यन्त मधुर प्रेम-सुधा-रस
घोला करता है। प्रिये राधिके ! तुम वस्तुतः ऐसी ही
हो, इसीसे मैं तुम्हारा नित्य ऋणी हूँ तथा बड़े ही
संकोचके साथ धीरे-धीरे तुम्हारी सेवा किया करता हूँ।’

(गीत)

निर्मल प्रेम नित्य यों बोलै।
अपने दोष विमल गुन पियके
लाख लाख करि काढ़ै—तोलै ॥
छक्यौ प्रेम रस-सुधा निरन्तर
अग-जग भयौ बावरौ बोलै।
दीलै हियो प्रेम-रस छूँछौ
पाव प्रेम-धन रतन अमोलै ॥
प्रेम-पियास बढ़त नित पावन
प्रेम अभाव दिखावत रोलै।
धनि धनि ऐसो प्रेम-धनी जो
नित नव प्रेम-गोलकहि बोलै ॥
मोय परम सुख पहुँचावन हित
नित अति मधुर अमीरस बोलै।
तुम ऐसी, तातैं मैं रिनिया,
सेवौ सकुचत हौले हौले ॥

आजके हम-सरीखे कामकलुषित-चित्त इस त्यागपूर्ण
प्रेमके महिमामय स्वरूपको क्या समझें।

बद्ध कौन ?

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

‘बद्धो हि को यो विषयानुरागी’

अकेला साधु, शरीरपर केवल कौपीन और हाथमें एक तूँबीका जलपात्र । गौर वर्ण, उन्नत भाल, अवस्था तरुणाईको पार करके वार्धक्यकी देहलीपर खड़ी । जटा बड़ायी नहीं गयी, बनायी नहीं गयी; किंतु बन गयी है । कुछ श्वेत-कृष्ण-कपिश वर्ण मिले-जुले केश उलझ गये हैं परस्पर ।

धूलिसे भरे चरण, कहीं दूरसे चलते आनेकी श्रान्ति । मुखकी घनी दाढ़ीपर भी कुछ धूलिके कण हैं । ललाटपर बड़ी-बड़ी स्वेदकी बूँदें झलमला आयी हैं । मध्याह्न होनेको आया, साधुको अब विश्राम करना चाहिये ।

‘यह क्या है ? ये लोग इस प्रकार क्यों भागे जा रहे हैं ? इतनी आकुलता क्यों है ?’ साधुको दूसरोंकी उलझनमें नहीं पड़ना चाहिये; किंतु दूसरोंकी विपत्ति उनके नवनीत-कोमल हृदयको द्रवित कर देती है—इसमें उनका दोष ? विपत्ति ही तो—विपत्तिके बिना क्या पूरा गाँव इस प्रकार अस्तव्यस्त भागता है ?

साधुने ग्रामके पास बट वृक्षके नीचे बने चबूतरापर कुछ देर विश्राम किया । कोई नहीं आया उनके समीप । गाँव बड़ा है, सम्पन्न दीखता है । ग्रामके अधिपतिकी ऊँची कोठी भी है वहाँ; किंतु गाँवमें तो कोई हलचल है । घोड़े, छकड़े लड़े जा रहे हैं । पशु इकट्ठे किये जा रहे हैं । ये लोग तो घरोंका पूरा सामान गाड़ियोंपर लद रहे हैं । बड़ी शीघ्रतामें हैं सब-के-सब ।

‘क्या बात है भाई ! आप सब बहुत घबराये-से लगते हैं ?’ साधुने खयं एक व्यक्तिके पास जाकर पूछा ।

‘महाराज, क्षमा करें ।’ श्रद्धापूर्वक उसने चरण-स्पर्श किया—‘हम ऐसी विपत्तिमें हैं कि कोई सेवा करनेमें इस समय समर्थ नहीं ।’

‘विपत्ति क्या है ? यदि बतानेमें कोई हानि न हो.....’

‘पिण्डारे आ रहे हैं ।’ उस व्यक्तिने बताया—‘प्रसिद्ध क्रूर पिण्डारा भीमपाठ अपना पूरा दल लिये बढ़ा आ रहा है । कई सौ घुड़सवार हैं उसके साथ ! वह असुर है प्रभु ! आप भी यहाँसे कहीं दूर चले जायें तो अच्छा । उन लोगोंमें किसीके लिये श्रद्धा नहीं । वे साधुकी भी हत्या करके प्रसन्न होनेवाले पिशाच हैं । वे छूटकर ही संतुष्ट नहीं होते, घरोंको जलकर और गिराकर तथा जो मिले उसीको क्रूरतम रीतियोंसे पीट-पीट कर मारनेमें विनोद मानते हैं ।’

‘विश्वनाथके चरणाश्रित मनुष्योंकी उदारता और दयापर निर्भर नहीं किया करते ।’ साधुने एक बार आकाशकी ओर नेत्र उठाया—‘भय उन मृत्युञ्जयके स्मरणसे भीत रहा करता है; किंतु इस समय मुझे तुम्हारे यहाँके गढ़पतिसे मिलना है । तुम इतना कर सकोगे ?’

‘आप गढ़पतिसे मिलेंगे ?’ ग्रामीण चौंका । ‘पिण्डारोंके लिये कोई वेश बना लेना कठिन नहीं है । क्या पता.....’

‘साधुपर शङ्का पाप होती है !’ साधुने कहा—‘जब शंकरका एक सेवक यहाँ आ ही गया है, तुमलोगोंको विपत्तिमें इसी प्रकार छोड़कर चला जाय, यह उसके स्वामीका अपमान है । कौन जाने आशुतोष इस बार

भीमपालपर ही अनुग्रह करनेवाले हों। तुम्हारी विपत्तिका कुछ-न-कुछ उपाय तो करना ही होगा।'

'आप मेरे साथ पधारें!' ग्रामीणकी श्रद्धा उसकी शङ्कासे प्रबल सिद्ध हुई। फिर उसने सुन रक्खा है कि पिण्डारा भीमपाल नृशंस है; किंतु शूर है। वह छलका आश्रय प्रायः नहीं लिया करता। गढ़पतिसे साधुको मिला देने मात्रसे कोई बड़ी हानि सम्भव नहीं। एकाकी शस्त्रहीन साधुका वह कर भी क्या सकता है।

× × ×

'आपको ठीक पता है कि पिण्डारे आ रहे हैं?' साधुने गढ़पतिको इधर-उधरकी बातें करनेका अवकाश नहीं दिया।

'तीन दिन पहले हमारा एक तरुण उनके आक्रमणमें घिर गया था।' गढ़पतिने भी मूल बात चलायी—'वह किसी प्रकार भाग आया। उस ग्रामको उन लोगोंने ध्वस्त कर दिया। वहाँ अब खंडहर और कहीं-कहीं उठता धुआँ होगा। कितने लोग मरे, पता नहीं।'

'आप अपने आश्रितोंकी रक्षा नहीं करेंगे?' साधुने उल्लाहना नहीं दिया। उनका स्वर सामान्य था।

'बड़ी करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।' खेदभरे स्वरमें गढ़पति कह रहे थे—'क्षत्रिय हूँ। मृत्युसे डरता नहीं। किंतु अपने सैनिकोंके साथ मरकर भी रक्षाकी कोई आशा नहीं। ये मुझीभर वीर उन शतशः दुर्दान्त दस्युओंके पद रोक नहीं सकते। अतः हम ग्राम खाली कर रहे हैं। घरोंका मोह छोड़ना पड़ेगा। शेष सब चल सम्पत्ति हम ले जायेंगे और खेत अभी तो खाली पड़े हैं।'

'निकल जा सकेंगे आप?' साधुका प्रश्न जितना सीधा था, उत्तर उतना कठिन था।

'कम आशा है। उनके अश्व वन्यपथके अभ्यस्त हैं। कोई वनका मार्ग उन्हें अज्ञात नहीं।' बड़ी निराशा थी गढ़पतिके स्वरमें—'वे ग्रामको खाली पाकर क्रुद्ध

होंगे। इस प्रदेशमें जनपद दूर-दूर हैं। वे थके, भूखे आयेंगे। उनके घोड़ोंको खली-दाना आवश्यक होगा। लंबी यात्राके बिना आगे भी आशा नहीं। निश्चय वे हमें ढूँढ़ेंगे। पर दूसरा कोई उपाय नहीं। वे प्रातः यहाँ पहुँचेंगे। तबतक हम जितनी दूर जा सकें।'

'इतनी दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है।' साधुने आश्वासन दिया—'मैं तुम्हें रोकता नहीं हूँ। रुक जाओ तो यहाँ भी विश्वनाथ सबकी रक्षा कर लेंगे। भरोसा न हो तो, कहीं इतने पास रुको सबके साथ कि जब पिण्डारे लौट जायें, तुमलोग आकर अपने घर सँभाल सको।'

'आप उनके स्वभावसे अपरिचित हैं।' गढ़पतिके स्वरमें वही वेदना बनी रही। 'घर सँभालने योग्य रहने दें, ऐसा सौम्य उनमें एक भी न मिलेगा।'

'मैं अपने विश्वनाथके स्वभावसे परिचित हूँ। अपने आश्रितकी उपेक्षा करना उन्हें आता नहीं।' साधुके स्वरमें अविचल आस्था गूँज रही थी—'तुम्हारे घर तुम्हें कल तीसरे पहर सुरक्षित मिलेंगे।'

'आप यहाँ रुकनेका आग्रह न करें।' गढ़पतिने बड़े खेदके साथ कहा—'एक सम्मान्य अतिथिको शत्रुके मुखमें—भूखे भेड़िये-जैसे शत्रुके मुखमें छोड़कर जानेका कलंक लेनेके बदले.....।'

'ठहरो!' साधुने बीचमें रोक दिया। 'मेरा कोई शत्रु नहीं। विश्वनाथके विश्वाका कोई जन नहीं जो मेरा सुदृढ़ न हो। साधु कहाँ रहे, कहाँ न रहे; यह निर्णय करनेका तुम्हें अधिकार है, ऐसा तुम नहीं सोचते होगे।'

'मैं आज्ञानुवर्ती हूँ; किंतु.....।'

'तब केवल आज्ञाका पालन करो।' साधुने स्थिर स्वरमें आदेश दिया—'यहाँसे सबको लेकर इसलिये जाओ कि तुम सब स्वतः आश्रस्त रह सको। मध्याह्नके पश्चात् यहाँ लौट आ सको, इतनी दूर दूर जाना पर्याप्त होगा।'

साधुने किसी प्रकार भी भोजन करना स्वीकार नहीं किया । वे वहाँसे सीधे उसी बटके नीचे आये और अपने भजन-पूजनमें लग गये ।

x x x

‘हम पूरे ग्रामका चक्कर करते आये हैं !’ प्रचण्डकाय भीमपालके सम्मुख उसके अपने सैनिकोंके स्वर भी भयसे काँपते थे—‘सूना पड़ा है ग्राम । खुले पड़े हैं घरोंके द्वार । टूटी चारपाईतक उनमें नहीं है ।’

‘बको मत !’ भीमपाल अब भी अपने काले घोड़ेपर ही सवार था । उसका कर्कश स्वर गूँजा—‘अश्वोंको दाना चाहिये । हमारे सभी सैनिक अब भोजन तथा विश्राम चाहते हैं । सूने घर ! हम चमगीदड़ नहीं हैं कि सूने घरोंमें उलटे लटकेंगे । उन घरोंको जलाकर हाथ सेक लेनेका काम पीले, पहले भगोड़ोंको ढूँढ़ निकालो ।’

‘एक आदमी है । एक कौपीनधारी गंगा साधु उस बरगदके नीचे ।’ एक सैनिकने सूचना दी—‘वह आँखें बंद किये बैठा है ।’

‘बाँध लाओ उसे !’ आज्ञा पूरी होते-होते तीन-चार अश्व दौड़ पड़े ।

‘गाँवके लोग कहाँ गये !’ रस्सियोंसे बाँधे सामने उपस्थित साधुसे भीमपालने पूछा सही; किंतु उसे आश्चर्य हो रहा था कि यह साधु बाँधे जानेपर भी प्रसन्न है और कोई प्रतिवाद नहीं करता ।

‘मुक्त पुरुष बंदियोंका विवरण नहीं रखते और बंदीके प्रश्नोंका उत्तर देनेको वे विवश भी नहीं ।’ साधुने नम्र किंतु दृढ़ स्वरमें उत्तर दिया ।

‘बंदी कौन ?’ भीमपाल कुछ आश्चर्यमें पड़ गया ।

‘जो भागनेको विवश हुए । जो घोड़ोंपर बैठे भागे आये । जो विश्वमें वासनाओंसे बाँधे भागते-नाचते ढोलते हैं ।’

‘जो रस्सीसे बाँधा सामने खड़ा है !’ अब पिण्डारेने अट्टहास किया ।

‘ये रस्सियाँ मिट्टीको बाँधती हैं !’ साधु हँसे—‘विश्वनाथके सेवकको बाँधनेकी शक्ति इनमें नहीं है । तू बाँधेगा प्रलयंकरके सेवकको ? स्वयं तेरा बन्धन कट नहीं सकता इस साधुके करोंका आश्रय पाये बिना ।’

‘मैं बाँधा हूँ ?’ दस्यु चिल्लाया—‘मैं तेरे प्रलापमें उलझ नहीं सकता । गाँवके भगोड़ोंका पता तुझे देना पड़ेगा ।’

‘अपना बन्धन तुझे दीखे, यह मेरे आराध्यकी कृपाके बिना सम्भव कहाँ है ?’ साधुने ध्यान ही नहीं दिया कि दो सैनिक अपने सरदारके संकेतके अनुसार कोड़े उठाये अश्वसे उतरकर उसके दोनों ओर आ खड़े हुए हैं । उन्होंने तो एक बार आकाशकी ओर दृष्टि उठायी—‘आशुतोष !’

‘आप मुझे क्षमा करें !’ भीमपाल अपने अश्वसे कूदा और सीधे साधुके चरणोंपर उसने मस्तक रख दिया—‘ये भयंकर सर्प ! ये फण फैलाये जलते नेत्रोंसे घूरते काले विषधर ! आप इनसे मेरी रक्षा करें !’

किसीकी समझमें कुछ नहीं आया । किसीको कुछ नहीं दीख रहा था । पिण्डारे सैनिकोंने केवल इतना समझा कि साधु कोई साधारण मनुष्य नहीं है । उसने अवश्य कुछ किया है—कोई चमत्कार !

‘ये मुझे जकड़े हैं । ये मेरी हड्डी-हड्डी तोड़े दे रहे हैं । मैं इनके विषसे जल जा रहा हूँ ।’ भीमपाल व्याकुल होकर इधर-उधर हाथ-पैर पटकने लगा था—‘आप कृपा करें ! आप रक्षा करें ! आप क्षमा करें !’ बार-बार साधुके पैरोंपर वह सिर पटकने लगा था ।

‘ये नाग आज तुम्हें नहीं बाँध रहे हैं ।’ साधु स्वस्थ प्रसन्न खड़े थे—‘ये तो सदासे बाँधे हैं तुम्हें । ये काले, नीले, पीले, चित्रवर्णी नाग—तुम्हारा काम, क्रोध

लोभ—तुम्हारी सांसारिक विषयोंकी प्रबल तृष्णा—तुम तो सदा इनके द्वारा जकड़े हो। सदा इनके विषसे दग्ध हो रहे हो। आज तुमने प्रभुकी कृपासे अपना बन्धन देखा।'

'सचमुच मैंने आज देखा।' भीमपालका क्रन्दन कम हुआ। उसने अपने हाथों साधुके बन्धनकी रस्सी खोली और फिर चरणोंपर गिरा—'अपने बन्धनको देखनेकी दृष्टि आपने दी प्रभु! इससे छूटनेकी

पद्धति—अब मैं इन चरणोंको छोड़नेवाला नहीं।'

गाँवके लोग शामको लौट आये थे। उन्हें भीमपालके यहाँ आनेके चिह्नरूपमें कहीं-कहीं घोड़ोंकी लीद मात्र मिली। वे साधु मिले नहीं। भीमपालके दलका भी फिर नाम नहीं सुनायी पड़ा। अवश्य एक प्रचण्डकाय साधु जो मौनी था, उक्त घटनाके कुछ ही दिनों बाद चित्रकूटमें देखा जाने लगा था।

न्यावहारिक अर्थशास्त्र

(लेखक—डा० सोहनलालजी गुप्त एम्० ए०, एम्-काम०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०)

अर्थशास्त्रकी परिभाषापर अनेक पश्चिमी एवं पूर्वीय अर्थशास्त्रियोंने अपने विचार व्यक्त किये हैं; जिनके परिणामस्वरूप इस विषयकी अनेक परिभाषाएँ प्रचलित हैं। इसी कारणसे डा० कीन्सने आलोचना करते हुए लिखा है कि 'इस शास्त्रने परिभाषाओंसे अपना गला घोट लिया है।' बारबरा ब्रूटनके हास्यमें भी यह कटु सत्य छिपा हुआ है कि जब कभी छः अर्थशास्त्री एक स्थानपर बैठते हैं, तब उनके सात मत होते हैं^१।

प्राचीन समयसे अर्थशास्त्रकी परिभाषाओंके निर्माण-सम्बन्धी कार्य चलते आये हैं और यह क्रम अब भी जारी है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह विज्ञान मानवसे सम्बन्ध रखता है; जिसकी मनोवृत्तियों एवं परिस्थितियोंमें वदैव परिवर्तन होते रहते हैं। अतः इससे सम्बन्धित विज्ञानोंमें भी परिवर्तनोंका होना स्वाभाविक है। हाँ, मार्शलके बाद कुछ समयतक इस कार्यमें कुछ स्थिरता दृष्टिगोचर होती थी, परंतु प्रोफेसर राबिन्सने अपनी पुस्तकमें एक नया दृष्टिकोण रक्खा। तबसे यह कार्य पुनः जोर पकड़ने लगा,

जिसके फलस्वरूप पाश्चात्य एवं पूर्वीय अर्थशास्त्रियोंने अर्थशास्त्र-सम्बन्धी समस्याओंपर नया साहित्य प्रस्तुत किया है। संयुक्त राष्ट्रसंघकी अनेक समितियोंने बहुत कुछ कार्य किया है। उनके प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। परंतु यह कहनेमें संकोच नहीं है कि उनके आर्थिक समस्याओंसे सम्बन्धित रोगनिदान एवं प्रस्तावित इलाज अनुपयुक्त ही हैं। और फिर भारतीय मानवकी पृष्ठभूमिमें उनके लिये विचार करना असम्भव ही प्रतीत होता है। मानवीय परम्पराओं एवं परिस्थितियोंका विचार करके हमें एक ऐसी परिभाषाका निर्माण करना है जो सार्वभौम हो सके। इसी उद्देश्यकी पूर्तिहेतु यह प्रयास किया गया है।

इस निबन्धका प्रमुख उद्देश्य विशुद्ध भोगवादी वर्तमान अर्थव्यवस्थासे, जिसमें मानवताका गला घुट रहा है और विशुद्ध भोगवादी बननेके विचारसे मानव अधिक-से-अधिक असीमित आवश्यकताको पूरा करनेके लिये प्रयत्न कर रहा है, छुटकारा प्राप्त कराकर, मानवको अधिक व्यावहारिक बनाकर, अधिकाधिक सुख एवं संतोष प्रदान कराना है।

औद्योगिक क्रान्तिके परिणामस्वरूप मानवमें स्वतन्त्रता, समानता एवं अधिकार-प्रियताकी लिप्सा अधिक बलवती हो गयी है। अतः इन विचारोंसे अनुप्राणित उच्छृङ्खल मानव, समाजके प्रति विद्रोह करके भी व्यक्तिगत जीवनस्तरको

१. "Political economy is said to have strangled itself with definitions" Scope and Methods of Political Economy. Page 153

२. Whenever six Economists are gathered there are seven opinions.

३. "An essay on the nature and significance of Economic Science.

ऊँचा उठानेका प्रयत्न कर रहा है और इस विचारसे प्रेरित होकर वह अपने लक्ष्योंके चुननेमें पूर्णतया तटस्थ है। प्रायः प्रोफेसर राबिन्स महोदयने भी अपने मौलिक निबन्धमें लक्ष्योंके चुननेमें तटस्थता दर्शायी है।^१ उनके दृष्टिकोणसे अर्थशास्त्रके विवेचनमें न तो मानवताका ही कोई अंश है और न नैतिकताका ही और न वे समाज-कल्याणको ही कोई महत्व देते हैं। उन्होंने अर्थशास्त्रके विवेचनको अमूर्त (Abstract) बनानेका प्रयत्न किया है। जब कि प्रो० जे० के० मेहताने अर्थशास्त्रको केवल आदर्श विज्ञान निरूपित किया है। उनके अनुसार अर्थशास्त्रमें, आवश्यकताहीनताकी दशाको पहुँचनेका प्रयत्न किया जाता है।^२

उपर्युक्त दोनों ही परिभाषाओंके विश्लेषणसे उनमें कोई व्यावहारिकता दृष्टिगोचर नहीं होती। यदि कोई विज्ञान हमारे व्यावहारिक जीवनमें लाभकारी सिद्ध नहीं होता तो ऐसे विज्ञानके अध्ययनका कोई महत्व ही नहीं रह जाता। व्यावहारिक जीवनमें लाभकारी सिद्ध होनेके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि अर्थशास्त्रका अध्ययन न केवल वास्तविक विज्ञान, अथवा न केवल आदर्श विज्ञानके रूपमें ही हो, अपितु दोनों विचारोंका सामञ्जस्य अनिवार्यरूपसे ही होना चाहिये। ऐसा करनेके लिये इसमें नैतिकता और मानवताका समावेश करना होगा। बारबरा बूटनने भी इस सम्बन्धमें ठीक ही कहा है कि अर्थशास्त्रियोंके लिये यह बहुत ही कठिन है कि वे अपनी विवेचनामें नैतिकताका समावेश लेशमात्र भी न करें^३। अर्थात् अर्थशास्त्रियोंके लिये अर्थशास्त्रमें नैतिकता एवं मानवताका समावेश करना नितान्त आवश्यक है। अतः अर्थशास्त्रकी कोई इस प्रकारकी परिभाषा होनी चाहिये, जिसमें मानवता, जो आज दानवताका रूप लिये जा रही है, सही अर्थोंमें पुनः आ सके। ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि भारतीय आर्थिक इतिहासके पृष्ठोंके अध्ययनसे विदित होगा कि प्राचीन आर्योंके जीवनमें 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' नामक चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति आवश्यक समझी जाती

थी। ये न तो विशुद्ध भोगवादी ही थे और न निरे त्यागवादी। अतः हमको न तो प्रो० राबिन्सका मत ही अपनाना है, जिससे मानव अपनी असीमित आवश्यकताओंको सीमित साधनोंसे पूरा करनेमें सदैव पागल बना रहे और न प्रो० मेहताका मत ही, जिसके अनुसार आवश्यकताहीनताकी दशाको पहुँचनेका प्रयत्न किया जाय, अपितु एक मध्यम मार्ग अपनाना है, जिससे हमारी भौतिक उन्नतिके साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नतिको भी बल प्राप्त होता रहे। इस लक्ष्यकी प्राप्ति हमें अर्थशास्त्रकी निम्न परिभाषासे ही हो सकती है:—

“अर्थशास्त्र मानव-क्रियाओंका वह विज्ञान है, जिसमें सुखार्थ प्रकृतिसम्मत आवश्यकताओंको न्यूनातिन्यून समुचित साधनोंसे, जिनके वैकल्पिक प्रयोग हो सकते हैं, पूरा करनेका अध्ययन किया जाता है।” अर्थात् मानवके सुखार्थ प्रकृतिसम्मत आवश्यकताओंके पूर्तिहेतु अत्यन्त सीमित एवं समुचित साधनोंके ज्ञान करानेवाले शास्त्रको अर्थशास्त्र कह सकते हैं। यहाँपर ‘सुखार्थ’ ‘प्रकृतिसम्मत आवश्यकताओं’ तथा न्यूनातिन्यून समुचित साधनोंका स्पष्टीकरण उपयुक्त ही है; क्योंकि हमारी परिभाषामें मौलिकता इन्हीं शब्दोंपर आधारित है।

प्रत्येक व्यक्तिद्वारा की जानेवाली सभी क्रियाओंका लक्ष्य सुखकी प्राप्ति ही होता है। अतः उसके द्वारा प्रकृतिसम्मत उन सभी आवश्यकताओंको पूरा करनेका प्रयत्न किया जाता है, जिससे उसे शारीरिक, भौतिक एवं मानसिक सुख-शान्ति मिल सके। हमें न केवल भौतिक अथवा शारीरिक सुखको ही केन्द्र मानकर चलना है, अपितु आत्मिक और मानसिक सुखको भी अधिक महत्व देना है। शारीरिक एवं भौतिक सुख तो अस्थायी और काल्पनिक ही है। स्थायी सुख तो अन्तरात्माका ही सुख है और वास्तवमें मानवीय प्रयत्नोंका लक्ष्य भी इसी सुखकी प्राप्ति ही है। परंतु अधिकांश पाश्चात्य अर्थशास्त्री अधिकतर भौतिक एवं बाह्य आवश्यकताओंको पूरा करनेके फेरमें पड़कर आन्तरिक सुखको गौण मान लेते हैं। परिणामस्वरूप जितना ही भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिका प्रयत्न किया जाता है, उतनी ही आन्तरिक अशान्ति उत्पन्न होने लगती है। ऐसा तभी होता है जब मानव अपने आध्यात्मिक तत्त्वको भूलकर भौतिक शरीरपर ही अधिक ध्यान देता है। परंतु हमारी परम्परा और प्रकृति हमें बताती है कि मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं और इच्छाओंका पिण्ड नहीं अपितु वह एक आध्यात्मिक तत्त्व है जिसने भौतिक

४. “Economics is entirely neutral between ends, economics is not concerned with ends as yet,”

५. “The science of human activities is considered as an endeavour to reach the state of wantlessness.”—Advance Economic Theory, page 22.

६. “It is very difficult for economists to divert their discussions completely of all normative significance.”

शरीर धारण कर रक्खा है। अतः इस तथ्यका सदैव ध्यान रखना चाहिये।

प्रकृतिसम्मत आवश्यकताओंसे हमारा अभिप्राय प्रकृति, देश एवं कालद्वारा निर्धारित की हुई कुछ सीमित आवश्यकताओंसे है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मानवकी आवश्यकताएँ धार्मिक, भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करनेपर सीमित ही विदित होती हैं। भले ही एक सामान्य कोटिका मानव उनकी सीमाको न जान सके, परंतु वास्तवमें वे सीमित हैं और व्यक्तिगत मानव उस सीमाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता; क्योंकि मानव-प्रकृति भविष्यके सम्बन्धमें उनकी सीमा निर्धारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकती। सामान्यतः साधारण मानवकी आवश्यकताओंके सीमित होनेपर भी उनकी सीमा अदृश्य है। हाँ, कुछ मानव, जिन्हें हम त्रिकालदर्शी भी कह सकते हैं, अपनी वर्तमान आवश्यकताओंको तो जानते ही हैं, भूतकी आवश्यकताओंको भी वैसे ही अनुभव करते हैं, जैसे वर्तमानकी आवश्यकताओंको।

प्रत्येक मानवकी कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं, जिनके अन्तर्गत भोजन, वस्त्र एवं आवासको सम्मिलित किया जाता है। इन मूलभूत आवश्यकताओंको अनेक प्रकारकी वस्तुओं—सात्विकी, राजसी एवं तामसीसे पूरा किया जा सकता है। अर्थात् ये आवश्यकताएँ विभिन्न प्रकारके व्यक्तियोंके लिये अनेक रूपोंमें प्राप्त हो सकती हैं।

सभी पदार्थ सबके उपभोग एवं दर्शन योग्य नहीं होते। जिस प्राणीका जिस प्रकारके कर्मोंका भोगानुकूल फल जहाँपर जैसे रहता है, वहाँपर वह उतना ही भोग करता एवं देखता है। अन्य स्थानोंमें स्थित अधिकका उसे दर्शन भी नहीं होता। तथा इन मूलभूत आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये मानवके द्वारा भौगोलिक, प्राकृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मानव-प्रकृति एवं प्रवृत्तिके अनुसार विविध प्रकारसे कार्य करके पूरा करना होगा। इन मूलभूत

आवश्यकताओंकी प्रत्येक मानवको किस प्रकारसे पूर्ति करनी है, यह उसकी परिस्थितियोंपर निर्भर है। जैसे-जैसे परिस्थितियोंमें परिवर्तन होता चलेगा, वैसे-वैसे ही मानवको उसकी आवश्यकताओंकी सीमामें भी परिवर्तन प्रतीत होगा, परंतु यह परिवर्तनकी सीमा उसकी अज्ञानताके कारण विदित नहीं होती।

आवश्यकताओंकी सीमा एक अन्य कारणसे भी सीमित विदित होती है। वह यह है कि मानवके जीवन-कालका कुछ समय है। उस समयमें वह एक सीमित मात्रामें ही वस्तुओंका उपभोग कर सकेगा। यदि वह अपनी कल्पनागत आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये आकांक्षा रखता है तो भी वे उस सीमाका उल्लङ्घन नहीं कर सकतीं, जो उसे जीवनमें पूरी करनी थी। इसको स्पष्ट करनेके लिये एक उदाहरण भी दिया जा सकता है।

मानवके पास समय एवं साधन सीमित हैं, परंतु उनके वैकल्पिक प्रयोग हैं—जैसे यदि एक व्यक्तिके पास एक घंटेका समय है—उसमें वह चाहता है कि वह बाजार-भ्रमण करे, सिनेमा देखे, हवाई जहाजमें सैर करे। इस प्रकारकी और भी कल्पनाएँ हो सकती हैं। परंतु वास्तवमें समयका उत्तम प्रयोग किसी एक या दो ही कार्योंके लिये हो सकता है। इसी प्रकार साधन भी सीमित हैं, उन सीमित साधनोंके अनेक प्रकारके प्रयोग करके अनेक आवश्यकताओंको पूरा करनेका प्रयत्न करता है, तो ऐसा करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इस कठिनाईसे बचनेके लिये मानव उसका सबसे उत्तम प्रयोग करके अपनी आवश्यकताओंको पूरा करनेका प्रयत्न करेगा। उदाहरणार्थ—एक एकड़ भूमिके टुकड़ेको गृहनिर्माण, फसल उगाना, फैक्टरी बनाना आदिके लिये प्रयोगमें लाया जा सकता है। यदि उस भूमिके टुकड़ेपर सभी बातोंकी एक ही समयमें व्यवस्था की जाय तो मानव एक विचित्र उलझनमें पड़ेगा। अतः इससे बचनेके लिये यही उत्तम होगा कि उसका प्रयोग केवल सबसे उत्तम कार्यके लिये ही हो। इस उत्तम प्रयोगसे भी मानवकी आवश्यकताएँ सीमित हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त एक आधार यह भी है, क्योंकि व्यक्तिकी विचारशक्ति सीमित है, अतः वह सीमित ज्ञानसे असीमितताकी ओर सोच भी नहीं सकता। सीमित ज्ञानसे तो सीमितताका ही विचार आ सकता है। हाँ, यह अवश्य माना जा सकता है

७. श्रीदीनदयाल उपाध्याय—भारतीय अर्थ-नीति-विकासकी एक दिशा, पृष्ठ ३।

८. योगवासिष्ठ, स्थितिप्रकरण, सर्ग १८, श्लोक ६-७

जगद्भुजासहस्राणि यत्रासंख्यान्यगायणौ।

अपरस्परलग्नानि काननं ब्रह्म नाम तत् ॥

मिथः सम्मिलनेनैता घनतां समुपागतः।

यद्यद्यत्र यथाऽऽरूढं तत्तत् पश्यति नेतरत् ॥

कि मिश्र-भिन्न व्यक्ति अपने विवेककी भिन्नताके कारण उसकी आवश्यकताओंकी सीमा भी भिन्न रूपसे निर्धारित कर ले परंतु सीमा अवश्य होगी ।

हाँ, विभिन्न व्यक्तियोंके विचारोंमें, जिनके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकारकी आवश्यकताओंका होना और उनका उपभोग किया जाना स्वाभाविक है । यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक मानव एक ही प्रकारकी वस्तुओंका उपभोग नहीं करना चाहता । समाजमें रहते हुए एक व्यक्तिके उपभोगका एक दूसरे व्यक्तियोंपर निर्देशात्मक (Demonstrative) एवं प्रतिक्रियात्मक (Reactionary) प्रभाव भी अवश्य होगा । परंतु उस प्रभावकी सीमा भी अवश्य होगी, जिसका उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता और वह सीमा उसकी परिस्थितियोंसे निर्धारित होती है ।

प्रश्न यह किया जा सकता है कि यदि प्रकृतिसम्मत आवश्यकताएँ सीमित हैं तो उन्हें सीमित साधनोंसे सुगमतासे पूरा किया जा सकता है ? यहाँपर आर्थिक समस्याका विचार प्रकट नहीं होता । इसके प्रत्युत्तरमें यह कहा जा सकता है कि प्रकृतिकी दयालुतासे मानवके लिये सभी प्रकारकी वस्तुओंकी उपलब्धि है, परंतु उनको उपभोगके लिये प्राप्त करनेमें मानवको प्रकृतिके साथ संघर्ष और कर्म करना होगा । यह संघर्ष एवं कर्म ही आर्थिक क्रियाओंका एक पहलू है । संघर्ष किस प्रकारसे

किया जाय, इस सम्बन्धमें मानवको उद्देश्य-प्राप्तिके साधनोंकी ओर ध्यान देना होगा और न्यूनातिन्यून साधनोंका समुचित प्रयोग करके प्रकृतिसम्मत आवश्यकताओंको पूरा करना होगा ।

न्यूनातिन्यून समुचित साधनोंके प्रयोगसे हमारा अभिप्राय, उद्देश्यकी प्राप्तिहेतु अर्थ-उत्पादन, उपभोग, वितरण, विनिमय एवं राजस्व—सभी क्षेत्रोंमें धर्मनियन्त्रित अर्थनीतिको अपनाना होगा । ऐसा करनेके लिये धर्म एवं नीतिके आधार-पर सामाजिक परिस्थितियोंपर विचार करते हुए धन कमाने एवं व्यय करनेसे सम्बन्धित मानवकी क्रियाओंको अर्थशास्त्रके अन्तर्गत स्थान दिया जाना चाहिये । यदि ऐसा होता है तो सफलता मिले या न मिले, शान्ति एवं सुख अवश्य प्राप्त होगा । यदि न्यायोचित क्रियाओंके करनेपर तथा समाजके अनुकूल होते हुए भी असफलता मिलती है तो उसे पुनः कार्यमें निष्ठा एवं तत्परतासे क्रियाशील बने रहना चाहिये । इससे उसे शान्ति एवं सुखका ही अनुभव होगा । अतः रोबिन्स महोदयके विपरीत लक्ष्योंके चुनने और पहुँचनेमें जो विधियाँ अपनायी जायँ वे न्यायोचित धैर्य एवं नीतियुक्त तथा समाजके हितोंमें होनी चाहिये । ऐसा होनेसे हमारे मतके अनुसार अर्थशास्त्रका क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है और इसके अन्तर्गत नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान आदि सिद्धान्तोंका भी समावेश होना चाहिये ।

प्रभुके दर्शनका कभी अभाव नहीं होता

आज मिल गया मुझे सहज ही प्रभुका मधु मंगल वरदान ।
शब्द-शब्दमें सुन पाता मैं अतः तुम्हारा ही गुणगान ॥
देख पा रहा अखिल विश्वमें रूप तुम्हारा ही अभिराम ।
स्पर्श पा रहा प्रति-स्पर्शमें एक तुम्हारा ही सुखधाम ॥
गन्ध मात्रमें पाता मैं नित अङ्ग गन्ध तव परम मधुर ।
प्रति रसमें पा रहा तुम्हारा नित्य दिव्य रस-सुधा अधर ॥
एक तुम्हारे सिद्धा कहीं भी कुछ भी नहीं बचा अवशेष ।
इससे होता कभी न प्रभुके दर्शनका अभाव लवलेख ॥

वैष्णवताका स्वरूप

(श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका एक भाषण)

मूकं करोति वाचालं पङ्क्तुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥
सर्व-त्याग करि जे सदा, सेवत हरि-पद-मूल ।
बंदौं तिन वैष्णव-चरन सुचि पद-पंकज-धूल ॥

वैष्णवधर्मका प्राचीन नाम है—‘सात्वतधर्म ।’ इसीके भक्त, भागवत, वैष्णव, पाञ्चरात्र, वैखानस, कर्महीन आदि अनेक भेद प्राचीन शास्त्रोंमें पाये जाते हैं । वैष्णव-धर्मका मूल वेद है ।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ।

विष्णुके इस परमपदका संधान ही वैष्णव-धर्म है । वैष्णवोंने प्रधानरूपमें चार महान् सद्गुरुओंकी परम्परा स्वीकार की है—श्री, ब्रह्मा, रुद्र और सनकादि । इन्हींके नामोंपर सम्प्रदाय चले । आजकल सम्प्रदाय शब्दका बड़ा दूषित अर्थ किया जाता है, किसीको द्वेष-हिंसा करते देखकर ही उसे साम्प्रदायिक कह दिया जाता है । वास्तवमें सम्प्रदायका अर्थ है—

शिष्टानुशिष्टोपदिष्टो मन्त्रः सम्प्रदायः ।

पूर्व आचार्यके समीप प्राप्त मन्त्र और साधनाका नाम ही सम्प्रदाय है । इसमें द्वेष-हिंसाकी तो कहीं कल्पना ही नहीं है और वैष्णव सम्प्रदाय तो भूतमात्रमें भगवान्को देखकर अत्यन्त विनम्रभावसे सबको नमस्कार, सबकी सेवा तथा सबका हित-साधन करता है । उपर्युक्त चार गुरु-परम्पराओंसे बने हुए चार सम्प्रदाय प्रधान माने जाते हैं—

रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः ।

श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुस्सनः ॥

श्रीलक्ष्मीजीकी कृपासे रामानुज, ब्रह्माकी अनुकम्पासे मध्वाचार्य, रुद्रके अनुग्रहसे विष्णुस्वामी और सनकादि मुनियोंके प्रसादसे निम्बार्काचार्य साधनाका सन्मार्ग दिखलाते हुए आचार्यपदपर प्रतिष्ठित हुए । श्रीवल्लभाचार्य, श्रीविष्णुस्वामीके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायके ही आचार्य माने जाते हैं । कुछ महानुभाव इनके पुष्टिमार्गको पृथक् भी मानते हैं । बंगालकी वैष्णव-प्रेम-सुधा-धारा बहुत अंशमें श्रीमध्वाचार्यके मतसे प्रभावित है, ऐसा महानुभावोंका मानना

है । इनमें श्रीरामानुजका श्रीसम्प्रदाय विशिष्टद्वैतवादी और भगवान् लक्ष्मीनारायणका उपासक है । श्रीमध्वाचार्यका द्वैतवादी और श्रीराधाकृष्णका उपासक है । श्रीविष्णुस्वामी या वल्लभाचार्यका शुद्धद्वैतवादी और श्रीबालगोपालका उपासक है । श्रीनिम्बार्काचार्यका द्वैताद्वैतवादी और श्रीराधाकृष्णका उपासक है एवं बंगालके प्रेमके ठाकुर श्रीगौराङ्गदेवका गौड़ीय सम्प्रदाय अचिन्त्यभेदाभेदवादी कहा जाता है तथा श्रीराधाकृष्णका उपासक है । ये सभी एक ही परमतत्त्वकी उपासना-सुधासरिताकी परम मधुर सुधा-तरङ्ग हैं और ये सभी वस्तुतः ‘सात्वत’ सम्प्रदायके ही अन्तर्गत हैं । इसके अतिरिक्त श्रीरामानन्दाचार्यका सम्प्रदाय भी प्रमुख वैष्णव-सम्प्रदाय है । और भी बहुत ही शाखा-उपशाखाएँ वैष्णव सम्प्रदायोंकी हैं । महाराष्ट्रमें निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपान-देव, मुक्ताबाई, नामदेव, तुकाराम, गुजरातके श्रीनरसिंह मेहता, उत्तर भारतके सूरदास, तुलसीदास आदि, आसामके श्रीशङ्करदेव, राजस्थानकी मीराबाई आदि सभी वैष्णवाग्रणी संत हुए हैं । दक्षिणमें श्रीरामानुजाचार्यसे बहुत पहले श्रीशठकोप, विष्णुचित्ति, भक्तपदरेणु, कुलशेखर और देवी अण्डाल आदि अल्वार वैष्णव महात्मा हो गये हैं, जो प्रेमोन्मत्तताके परम आदर्श हैं । ये सभी वैष्णवधर्मके परम सुन्दर स्वरूपका ही प्रकाश करते हैं ।

वेद, उपनिषद्, नारद-पाञ्चरात्र, महाभारत, रामायण, पुराण, तन्त्र आदि असंख्य महामान्य ग्रन्थोंमें वैष्णवधर्मके लक्षणोंका तथा इतिहासका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है । श्रीमद्भागवतके, जो वैष्णवोंका सर्वमान्य ग्रन्थ है तथा जो परमहंससंहिताके नामसे प्रख्यात है, ग्यारहवें स्कन्धमें भागवतधर्मके वर्णन-प्रसंगमें वैष्णवता या वैष्णवोंका स्वरूप-लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येव भागवतोत्तमः ॥

(११।२।४५)

आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियोंमें आत्मारूपसे—नियन्तारूपसे स्थित हैं । जो कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ताको ही देखता है और

साथ ही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप भगवान् में ही स्थित है—वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही है—इस प्रकारका जिसका अनुभव है, उसे भगवान्का परम प्रेमी उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव समझना चाहिये ।

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विपत्सु च ।

प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥

(११।२।४६)

जो भगवान्से प्रेम, उनके भक्तोंसे मित्रता, दुखी और अज्ञानियोंपर कृपा तथा भगवान्से द्वेष करनेवालोंकी उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटिका भागवत—वैष्णव है ।

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ।

न तद्भक्त्येषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥

(११।२।४७)

जो भगवान्के अर्चा-विग्रह—मूर्ति आदिकी पूजा तो श्रद्धासे करता है, परंतु भगवान्के भक्तों या दूसरे लोगोंकी विशेष सेवा-शुश्रूषा नहीं करता, वह साधारण श्रेणीका भगवद्भक्त—वैष्णव है ।

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति ।

विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥

(११।२।४८)

जो कर्ण, नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-रूप आदि विषयोंका ग्रहण तो करता है, परंतु प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हर्षित नहीं होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब हमारे भगवान्की लीला—माया है, वह पुरुष उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव है ।

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो

जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ।

संसारधर्मैरविमुह्यमानः

स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥

(११।२।४९)

संसारके धर्म हैं—जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट, भय और तृष्णा । ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं । जो पुरुष भगवान्की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे तनिक भी मोहित नहीं होता, वह उत्तम भागवत—श्रेष्ठ वैष्णव है ।

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः ।

वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥

(११।२।५०)

जिसके मनमें विषय-भोगकी इच्छा, विषयार्थ कर्म-प्रवृत्ति और उनके बीज—वासनाओंका उदय नहीं होता और जो एकमात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त—श्रेष्ठ वैष्णव है ।

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।

सज्जतेऽस्मिन्नहम्भावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥

(११।२।५१)

जिसका इस शरीरमें न तो सत्कुलमें जन्म एवं तपस्या आदि कर्मसे तथा न वर्ण, आश्रम एवं जातिमें ही अहंभाव होता है, वह निश्चय ही भगवान् श्रीहरिका प्यारा वैष्णव है ।

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।

सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

(११।२।५२)

जो धन-सम्पत्ति अथवा शरीर आदिमें यह अपना है और यह पराया—इस प्रकारका भेद-भाव नहीं रखता, समस्त पदार्थोंमें समस्वरूप परमात्माको देखता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा संकल्पसे विक्षिप्त न होकर शान्त रहता है, वह भगवान्का उत्तम भक्त—श्रेष्ठ वैष्णव है ।

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-

स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।

न चलति भगवत्पदारविन्द-

ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥

(११।२।५३)

राजन् ! बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें ढूँढ़ते रहते हैं—भगवान्के ऐसे चरणकमलोंमें आधे क्षण, आधे पलके लिये भी जो कभी नहीं हटता, निरन्तर उन चरणोंकी संनिधि और सेवामें ही संलग्न रहता है; यहाँतक कि त्रिभुवनकी राज्यलक्ष्मी दी जानेपर भी वह भगवत्स्मृतिमें निरन्तर लगा ही रहता है, उस राज्यलक्ष्मीकी ओर ध्यान ही नहीं देता; वही पुरुष वास्तवमें भगवद्भक्त वैष्णवमें अग्रगण्य है, सबसे श्रेष्ठ है ।

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशिखा-

नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ।

हृदि कथमुपसीदतां पुनः स

प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥

(११।२।५४)

निखिल सौन्दर्य-माधुर्य-निधि भगवान्के चरणोंके

अङ्गुलि-नखकी मणि-चन्द्रिकासे जिन शरणागत भक्तजनोंके हृदयका संताप एक बार दूर हो चुका है, उनके हृदयमें वह ताप फिर कैसे आ सकता है, कैसे चन्द्रोदय होनेपर सूर्यका ताप नहीं लग सकता ।

सिंजति हृदयं न यस्य साक्षा-

द्धरिवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।

प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः

स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥

(११।२।५५)

विवशत से न मोचरण करनेपर भी सम्पूर्ण पापराशिको नष्ट कर देनेवाले स्वयं भगवान् श्रीहरि जिनके हृदयको क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते हैं; क्योंकि उन्हे प्रेमकी रस्सीसे उनके चरण-कमलोंको बाँध रखा है, वास्तवमें ऐसा पुरुष ही भगवान्‌के भक्तोंमें प्रधान है ।

इस श्रेष्ठ वैष्णवताकी प्राप्तिके लिये नीचे लिखे साधन करने चाहिये—

सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु ।

दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥

(११।३।२३)

पहले शरीर, संतान आदिमें मनकी अनासक्ति सीखे । फिर भगवान्‌के भक्तोंसे प्रेम कैसा करना चाहिये—यह सीखे । इसके पश्चात् प्राणियोंके प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनयकी निष्कपट भावसे शिक्षा ग्रहण करे ।

शौचं तपस्तिथिं च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ।

ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥

(११।३।२४)

मिट्टी, जल आदिसे बाह्य शरीरकी पवित्रता, छल-कपट आदिके त्यागसे भीतरकी पवित्रता, अपने धर्मका अनुष्ठान, सहनशक्ति, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें हर्ष विगदसे रहित होना भी ।

सर्वज्ञांश्चरान्नीक्षां कैः त्वयमनिकेतताम् ।

त्रिविक्तवीरसंनं संतोषं येन केनचित् ॥

(११।३।२५)

सर्वत्र अर्थात् समस्त देश, काल और वस्तुओंमें चेतन-रूपसे आत्मा और नियन्तारूपसे ईश्वरको देखना, एकान्त

सेवन, यही मेरा घर है—ऐसा भाव न रखना, गृहस्थ हो तो पवित्र वस्त्र पहनना और त्यागी हो तो फटे-पुराने पवित्र चिथड़े, जो कुछ प्रारब्धके अनुसार मिल जाय, उसीमें संतोष करना सीखे ।

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ।

मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥

(११।३।२६)

भगवान्‌की प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा और दूसरे किसी भी शास्त्रकी निन्दा न करना, भगवच्चिन्तन-के द्वारा मनका, मौनके द्वारा वाणीका और वासनाहीनताके अभ्याससे कर्मोंका संयम करना, सत्य बोलना, इन्द्रियोंको अपने-अपने गोलकोंमें स्थिर रखना और मनको कहीं बाहर न जाने देना सीखे ।

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ।

जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥

(११।३।२७)

राजन् ! भगवान्‌की लीलाएँ अद्भुत हैं । उनके जन्म, कर्म और गुण दिव्य हैं । उन्हींका श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना तथा शरीरसे जितनी भी चेष्टाएँ हों, सब भगवान्‌के लिये करना सीखे ।

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।

दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥

(११।३।२८)

यज्ञ, दान, तप अथवा जप, सदाचारका पालन और स्त्री, पुत्र, घर, अपना जीवन, प्राण तथा जो कुछ अपनेको प्रिय लगता हो, सब-का-सब भगवान्‌के चरणोंमें निवेदन करना, उन्हें सौंप देना सीखे ।

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ।

परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥

(११।३।२९)

जिन संत पुरुषोंने सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका अपने आत्मा और स्वामीके रूपमें साक्षात्कार कर लिया हो, उनसे प्रेम, और स्यावर, जङ्गम दोनों प्रकारके प्राणियोंकी सेव, विशेष करके मनुष्योंकी, मनुष्योंमें भी परोपकारी सज्जनोंकी और उनमें भी भगवत्प्रेमी संतोंकी करना सीखे ।

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ।

मिथो रतिमिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥

(११।३।३०)

भगवान्‌के परम पावन यशके सम्बन्धमें ही एक-दूसरेसे बातचीत करना और इस प्रकारके साधकोंका इकट्ठे होकर आपसमें प्रेम करना, आपसमें संतुष्ट रहना और प्रपञ्चसे निवृत्त होकर आपसमें ही आध्यात्मिक शान्तिका अनुभव करना सीखे ।

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽवौचहरं हरिम् ।

भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥

(११ । ३ । ३१)

राजन् ! श्रीकृष्ण राशि-राशि पापोंको एक क्षणमें भस्म कर देते हैं । सब उन्हींका स्मरण करें और एक-दूसरोंको स्मरण करावें । इस प्रकार साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते-करते प्रेम-भक्तिका उदय हो जाता है और वे प्रेमोद्रेकसे पुलकित-शरीर धारण करते हैं ।

क्वचिद् रुदन्यच्युतचिन्तया क्वचि-

द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्यलौकिकाः ।

नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं

भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥

(११ । ३ । ३२)

उनके हृदयकी बड़ी विलक्षण स्थिति होती है । कभी कभी वे इस प्रकार चिन्ता करने लगते हैं कि अबतक भगवान्‌ नहीं मिले, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ, कौन मुझे उनकी प्राप्ति करावे ? इस तरह सोचते-सोचते वे रोने लगते हैं, तो कभी भगवान्‌की लीलाकी स्फूर्ति हो जानेसे ऐसा देखकर कि परमैश्वर्यशाली भगवान्‌ गोपियोंके डरसे छिपे हुए हैं, खिलखिलकर हँसने लगते हैं । कभी-कभी उनके प्रेम और दर्शनकी अनुभूतिसे आनन्दमग्न हो जाते हैं तो, कभी लोकातीत भावमें स्थित होकर भगवान्‌के साथ बातचीत करने लगते हैं । कभी मानो उन्हें सुना रहे हों, इस प्रकार उनके गुणोंका गान छेड़ देते हैं और कभी नाच-नाचकर उन्हें रिश्ताने लगते हैं । कभी-कभी उन्हें अपने पास न पाकर इधर-उधर ढूँढ़ने लगते हैं, तो कभी-कभी उनसे एक होकर, उनकी संनिधिमें स्थित होकर परम शान्तिका अनुभव करते और चुप हो जाते हैं ।

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ।

नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥

(११ । ३ । ३३)

राजन् ! जो इस प्रकार भागवतधर्मोंकी शिक्षा ग्रहण

करता है, उसे उनके द्वारा प्रेम-भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है और वह भगवान्‌ नारायणके परायण होकर उस मायाको अनायास ही पार कर जाता है, जिसके पंजेसे निकलना बहुत ही कठिन है ।

इन लक्षणों तथा साधनोंसे वैष्णवताका स्वरूप भलीभाँति ध्यानमें आ गया होगा । वास्तवमें वैष्णव भक्त अपनेको प्रभुका सेवक तथा समस्त जगत्‌को अपने परम प्रेमास्पद प्रभुका ही स्वरूप मानता है । तुलसीदासजी कहते हैं—

सो अनन्य जाकैं असि मति न टरइ हनुमंत ।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

उमा जे रामचरन रत बिगत काम मद क्रोध ।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ॥

सीयराममय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

केवल मनुष्योंमें ही नहीं, चेतन प्राणियोंमें ही नहीं, भगवान्‌के भक्त वैष्णवजन जड़-चेतन सभीमें अपने प्रभु भगवान्‌का दर्शन करके सबको नमस्कार करते हैं । श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च

ज्योतींश्चि सस्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।

सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं

यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥

(११ । २ । ४१)

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्रादि, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदियाँ और समुद्र जो कुछ भी है, सभी भगवान्‌ हरिका शरीर ही है, अतः सबको अनन्यभावसे प्रणाम करे ।

श्रीमद्भगवद्गीतामें जिस परमधर्मका उपदेश भगवान्‌ने किया है, उसीका वस्तुतः पाञ्चरात्र आगममें वर्णन है अथवा उस अतिप्राचीन आगमोक्त भक्ति-धर्म-विग्रहको ही भगवान्‌ने परम सुन्दर नवीन वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके गीतोपदेशके रूपमें प्रकट किया है । यह भक्ति ही धर्मका सर्वस्व है । श्रीमद्भगवद्गीताके दार्शनिक विचारोंके समर्थनरूपमें ही श्रीमद्भागवतका अवतार है । ब्रजकी महाभाग्यवती रससुधामयी श्रीगोपाङ्गनाएँ इसी भक्तिकी माधुर्यमयी मूर्ति हैं । वे गीताकी ही जंगम प्रतिमा हैं । उस श्रीमद्भगवद्गीतामें ११ वें अध्यायके अन्तमें वैष्णवके—अनन्य भक्तके लक्षण बतलाते हुए कहा है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥
(११ । ५५)

अर्जुन ! जो केवल मेरा ही कर्म करता है, मेरे ही परायण है और मेरा ही भक्त है, कहीं भी जिसकी आसक्ति नहीं है एवं समस्त प्राणियोंमें जो निर्वैर है, वह मुझे प्राप्त होता है ।

इसी गीताके बारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने वैष्णवोंके—अपने प्रिय भक्तोंके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा है—‘जो प्राणीमात्रमें द्वेष नहीं करता, जो सबका मित्र है, किसीको दुखी देखकर जिसका हृदय करुणाद्रि हो जाता है, जो ममता तथा अहंकारसे रहित है, अपने दुःख-सुखमें समबुद्धि है, बुरा करनेवालेका भी भला करता है, सदा संतुष्ट है, नित्य मुझ भगवान्से संयुक्त है, मन-इन्द्रियोंका विजेता है, दृढ़निश्चयी है, मुझ भगवान्को ही जिसके मन-बुद्धि समर्पित हैं । जिसके किसी भी आचरणसे लोग उद्विग्न नहीं होते, जो स्वयं लोगोंसे उद्विग्न नहीं होता, हर्ष-अमर्ष, भय-उद्वेगसे मुक्त है । जो किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं रखता, सदा पवित्र तन-मन है, भगवत्-सेवामें चतुर है, रागद्वेषरहित उदासीन है, जिसको कोई भी सांसारिक व्यथा नहीं सताती, जो सकाम भावसे कोई आरम्भ नहीं करता । जो अनुकूलकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होता, प्रतिकूलसे द्वेष नहीं करता, अनुकूलके विनाश तथा प्रतिकूलकी प्राप्ति होनेपर सोच नहीं करता और अनुकूलकी प्राप्ति एवं प्रतिकूलके नाशके लिये आकांक्षा नहीं करता, इस प्रकार जो शुभाशुभका परित्यागी है, जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःखमें समबुद्धि है, विषयासक्तिसे सर्वथा रहित है, स्तुति-निन्दाको समान मानता है, व्यर्थ भाषण नहीं करता, जिस किसी भी स्थितिमें संतुष्ट है, घर-द्वारमें ममतायुक्त नहीं है, स्थिरबुद्धि है, इस परम धर्माभूतके द्वारा जो श्रद्धापूर्वक नित्य मुझ भगवान्की उपासना करता है, श्रद्धायुक्त है और भगवत्परायण है, वह भक्तिमान् वैष्णव मुझ—भगवान्को अत्यन्त प्रिय है ।

ये वैष्णवताके सार्वभौम स्वरूप-लक्षण हैं । यद्यपि जैसे गेरुवाँ वस्त्र चतुर्थाश्रम—सर्वत्यागरूप संन्यासका प्रतीक है, वैसे ही माला-तिलक आदि भी वैष्णवताके बाह्य चिह्न हैं तथापि केवल बाहरी वेष-भूषासे न कोई त्यागी होता है, न वैष्णव । बाहरी दिखावा तो दम्भसे या बुरी नियतसे भी हो सकता है, पुलिसकी पोशाक पहनकर डाकू लोगोंको लूट लेते हैं, खादी

धारण करके जनताको लोग ठग लेते हैं । वैसे ही वैष्णवके तिलक-मालासे जनता ठगी जा सकती है । अतएव भीतरका स्वरूप ही असली स्वरूप है । इसीसे उपर्युक्त श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीतामें निरूपित भक्तके स्वरूप-लक्षणोंमें बाहरी वेश-भूषाका वर्णन नहीं है । जीवनका बाह्याभ्यन्तर आचार ही उसका वास्तविक स्वरूप है ।

वैष्णवताके इन्हीं स्वरूप-लक्षणोंका वर्णन गुजरातके महान् वैष्णव श्रीनरसिंह मेहताने अपने इस सरल गुजराती भाषामें भजनमें किया है । यह भजन महात्मा गाँधीको बहुत ही प्रिय था ।

वैष्णवजन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे ।
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे ॥
सकल लोकमाँ सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे ।
वाच काल मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे ॥
समदृष्टि ने तृष्णात्यागी, परस्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर-धन नव झाले हाथ रे ॥
मोह-माया ब्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेनाँ मनमाँ रे ।
रामनामसु ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमाँ रे ॥
वणलोभीने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्य रे ।
भणे नरसैयो तेनुं दरशन करतां कुल एकोत्तर तार्य रे ॥

वस्तुतः वैष्णव वही है जिसका जीवन सब समय, सब ओरसे, सभी प्रकारसे केवल भगवान्की सेवामें ही लगा है । वह कर्मसे विरत नहीं, परंतु उसका प्रत्येक कर्म, प्रत्येक विचार होता है—केवल भगवत्सेवाके—भगवत्पूजाके लिये ही । वह सदा-सर्वदा अपने प्रत्येक कर्मसे, प्रत्येक व्यवहारसे अपने प्रभु भगवान्की पूजा ही करता है । यों तो जिसकी जीभसे भगवान्के मधुर मनोहर नामका उच्चारण होता है वह भी वैष्णव तथा परम पूजनीय है । श्रीगौराङ्ग महाप्रभु कहते हैं—

प्रभु कहे यांर मुखे सुनि एक बार ।
कृष्ण नाम सेई पूज्य श्रेष्ठ सबकार ॥
अतएव यांर मुखे एक कृष्ण नाम ।
सेई त वैष्णव करिह ताँहार सम्मान ॥
कृष्ण नाम निरन्तर याँहार बढने ।
से वैष्णवश्रेष्ठ भज ताँहार चरणौ ॥

वस्तुतः वैष्णवका या वैष्णवके स्वरूपका वर्णन सहज नहीं है । यह तो वैष्णव-हृदयके अनुभवकी वस्तु है । अतएव इसका वर्णन करने जाना अपनी अज्ञानताको ही प्रकट करना है । मुझ-सरीखा—अभिमानसे भरा सामान्य प्राणी

पवित्रतम वैष्णवधर्मकी क्या बखान करे । महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

जो अपनेको तृणसे भी अधिक नीचा मानते हैं, जो वृक्षके समान सहनशील हैं, (पत्थर मारनेवालेको सुखादुःखपूर्ण फल देते हैं, काटने-चीरने-जलानेवालोंका भी भाँति-भाँतिसे उपकार करते हैं) जो अमानी होकर सबको मान देनेवाले हैं, उन्हींके द्वारा हरि सदा कीर्तनीय हैं । ये ही सच्चे वैष्णवके लक्षण हैं ।

आज सभी विषयकामनाकी आगसे जल रहे हैं । सारा जगत् वस्तुतः आज इस प्रेममय वैष्णव-धर्मकी प्रेमसुधा-धाराके अभावसे ही संतुष्ट है । जिस विश्वप्रेममें एक दिन, शान्तिपुर 'डुबु-डुबु नदे भेसे जाय ।' इस प्रेमका प्लावन बंगालके नवद्वीपमें आरम्भ हुआ था । प्रेमके ठाकुर श्रीगौराङ्गके

श्रीचरणोंमें हम सभी प्रार्थना करें कि आजका जल्ला हुआ जगत्—एक बार फिर उसी पवित्र त्यागरूप प्रेमकी सुधा-धारासे आप्लावित हो । हम सभी श्रीचैतन्य महाप्रभु के आदर्शके अनुसार प्रेमकी सुधा-धारासे आप्लावित होकर परम शान्ति तथा परम सुखका अनुभव करें ।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां

ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षज

आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥

समस्त विश्वका कल्याण हो, दुष्ट प्रकृतिके लोग क्रूरताका त्याग करें । सब जीव परस्पर मङ्गलचिन्तन करें । हमारी बुद्धि अधोक्षज श्रीभगवान्में अहैतुकी प्रीतिके साथ भलीभाँति लगी रहे ।

बोलो वैष्णवजन तथा उनके प्रभु प्रेमधाम प्रभुकी जय जय !

आत्म-निर्भरता

(लेखक—श्रीजयकान्तजी झा)

बिना किसीका अवलम्ब लिये अपना कार्य अपने-आप ही करना 'आत्म-निर्भरता' है । यह एक बहुत बड़ी तपस्या है । इस तपस्यासे मानसिक शक्तिका विकास होता है और मनुष्यमें आत्म-विश्वास बढ़ता चला जाता है । यदि हम अपने-आपको इस विषयमें नियन्त्रित कर लें तो हमारी बहुत-सी कठिनाइयाँ सहज ही दूर हो जायँ । 'सर्वे परवश दुःखम्' के अनुसार व्यक्ति और वस्तुकी दासतामें हमें कितना कष्ट उठाना पड़ता है, यह सर्वविदित है । आत्मनिर्भर (स्वावलम्बी) होकर जीवन-यापन करनेसे मनुष्यकी कार्य-कारिणी शक्ति बढ़ती जाती है । जो व्यक्ति अपने-आपसे प्रेरित होकर कार्य करता है, उसे एक अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्ति होती है ।

'माँगन भलो न बाप सौ, जो बिधि राखै टेक'

इस सिद्धान्तके अनुसार हमें कभी किसीसे कुछ नहीं माँगना चाहिये । जब हम किसीसे कुछ याचना करने जाते हैं, तब हमें आत्म-ग्लानि एवं संकोचका अनुभव होता है । जो व्यक्ति जितना ही अधिक अयाचक या आत्म-निर्भर

है वह उतना ही महान् है । उसे किसीसे भय नहीं होता, अनुचित ढंगसे किसीकी खुशामद नहीं करनी पड़ती और वह सदा प्रसन्न मुद्रामें दिखायी पड़ता है । अशान्तिका एक प्रधान कारण 'आत्म-निर्भरता'का अभाव तथा व्यक्ति, वस्तु एवं परिस्थितिकी दासता है । जिस व्यक्तिसे हम कुछ याचना करते हैं उसकी दृष्टिमें तो हम निम्न हो ही जाते हैं, साथ-ही-साथ हमारा आत्म-विश्वास भी जाता रहता है । जो व्यक्ति जितना ही अधिक दूसरोंका भरोसा करता है, वह उतना ही अधिक अपनी शक्तिका हास करता है और उतना ही अधिक पराधीन होता है ।

एक बात और है, याचना करनेसे कुछ प्राप्ति नहीं होती । इसके अतिरिक्त जो कुछ माँगनेसे मिलता है, उसका त्याग किसी-न-किसी रूपमें हमें अवश्य करना पड़ता है । उस समय बहुत ही कष्ट होता है । यदि हम किसीसे कुछ न माँगनेका अभ्यास करें और सदा-सर्वदा कुछ-न-कुछ देकर समाज-कल्याण करते रहें तो हमें समाजका प्रेम प्राप्त होता रहेगा एवं हमारे आत्म-बलका विकास होगा । ऐसी स्थितिमें हमें

ईश्वरकी ओरसे सहायता प्राप्त होने लगती है। घट-घटमें व्यापक परमात्माका वास हमारे हृदयमें है ऐसा विश्वास करके जीवनका प्रत्येक कार्य करनेसे हमारे सब कार्य बड़ी ही सरलता एवं आसानीसे पूर्ण होते रहते हैं और हमें शान्ति एवं संतोषका अनुभव होता है।

हमें एक बातका ध्यान और रखना है—हम समाजसे जितना लाभ उठाते हैं, उससे अधिक सेवा यदि हम समाजकी करते हैं तो उस सेवा-भावसे हमारी आत्मिक शक्तिका विकास होता है और यदि हमारी सेवामें कमी होती है तो हमें मानसिक अशान्ति एवं ग्लानि तथा संकोचका अनुभव होता है। अतः हम जितना लाभ संसारसे उठावें उससे अधिक सेवा करनेकी भावना रखें, तभी हमारा जीवन सफल होगा।

हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि हम ऐसे व्यक्तियोंके बीचमें रहें जो हमारी बराबरीके हों क्योंकि अपनेसे अधिक सम्पन्न व्यक्तियोंके बीच रहनेसे हमारे अंदर माँगनेकी प्रवृत्ति (याचकता) उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है और इस प्रकार हमारा पतन होता है। हम जब भी किसी व्यक्तिके पास जायँ तो उसे कुछ देने अथवा उसकी सेवा करनेके अभिप्रायसे जायँ। ऐसा करनेसे हमें आत्म-बल प्राप्त होता रहेगा। इसके विपरीत यदि हम किसीके पास कुछ माँगनेकी

भावनासे जायँगे तो हमें अपनी लघुताकी अनुभूति होगी। इसलिये हमें सर्वदा किसीके पास कुछ लेने नहीं, वरं कुछ देनेके विचारसे ही जाना चाहिये।

हम जो कार्य अपने भरोसे अपनी शक्तिसे करते हैं उसमें एक विशेष आह्लाद एवं प्रसन्नताकी अनुभूति होती है और ऐसे समयमें एक अज्ञात शक्तिद्वारा हमें आत्मिक शक्ति एवं स्फूर्ति प्राप्त होती रहती है। इसके विपरीत यदि तनिक भी सहायता दूसरोंसे प्राप्त करनी पड़ी तो रस फीका पड़ जाता है। अतः हमें सदैव आत्म-निर्भर रहकर अपना सब कार्य करना चाहिये और कभी भी किसीसे किसी प्रकारकी सहायता प्राप्त करनेकी इच्छा न रखनी चाहिये। यही सफलताकी कुंजी है।

हालमेंही एक ऐसी घटना हुई जिससे मुझे 'आत्म-निर्भरता'में पूर्ण आस्था हो गयी। मैंने यह नियम बनाया कि मैं नित्य बिना एक व्यक्तिको भोजन कराये स्वयं भोजन न करूँगा। इस महँगीके युगमें पहले तो मुझे इस कर्तव्य-पालनमें शंका हुई किंतु न जाने किस अज्ञात शक्तिद्वारा अबतक बराबर ऐसी सुविधा मिलती जा रही है कि इस पुण्य कार्यका निर्वाह मेरे द्वारा बहुत ही सरलतापूर्वक होता चला जा रहा है। और मुझे आशा है कि सदैव इस कर्तव्य-पालनमें मेरी सहायता प्रभुकी ओरसे होती रहेगी।



सावधान

वह विकास विनाश होगा, वह उन्नति अधोगति होगी, वह उत्थान पतन होगा, वह सौभाग्य दुर्भाग्य होगा, वह पुण्य पाप होगा, वह बुद्धिमानी मूर्खता होगी और वह सम्पत्ति विपत्ति होगी, जो जीवनको अध्यात्मके आधारसे अलग करके, परमात्मासे पृथक् करके केवल भोगोंकी प्राप्तिमें—केवल भौतिक सफलताके साधनोंमें लगा देगी। भोग—यदि भगवान्को भुलानेवाले हैं और भगवान्की पूजाकी सामग्री नहीं हैं तो उनसे निश्चय ही दुःखोंकी उत्पत्ति होती है, ऐसे दुःखोंकी, जिनकी परम्परा नये-नये दुःखोंके रूपमें चलती ही रहती है। अतएव सावधान रहो। भगवान्के साथ जीवनको जोड़े रखते हुए ही सब कुछ सोचो, सब कुछ करो। केवल भौतिक विचार तथा भौतिक कर्म तो भूतोंका ही भयानक अकाण्डताण्डव होगा।



उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

समुद्र-सतहसे १०,२०० फुटकी ऊँचाईपर स्थित गङ्गोत्तरी एक सुन्दर स्थान है। गङ्गाके इस पार छोटी-छोटी दूकानों, कुछ धर्मशालाओं और मन्दिर मिलकर एक छोटी-सी बस्ती बन गयी है। यहाँ वन-विभागका एक विश्रामालय भी है। गङ्गा उस पार कुछ अच्छे साधु-महात्मा निवास करते हैं, जिनकी हरित गिरिशृङ्गोंकी तलहटीमें सुन्दर कुटियाँ हैं। यहीं श्रीव्यासदेवजीका योग-निकेतन भी है। गङ्गोत्तरी हमारे पहुँचते ही व्यासदेवजीने कृपाकर योग-निकेतनमें हमारे ठहरनेके लिये संदेश भेजा। यहाँके वन-विश्रामालयमें भी हम ठहर सकते थे, किंतु हमारा यहाँ मुकाम केवल एक रात्रिका था और हम अपने इस अल्प मुकाममें मुख्यतासे यहाँके सभी धार्मिक कृत्य विधिपूर्वक करना चाहते थे। उसमें ऐसे स्थानपर हमारा ठहरना उचित था जहाँसे सब काम सुविधापूर्वक हो सकें और इस दृष्टिसे हमारा यह मुकाम, जहाँ हम ठहरे हुए थे, सर्वथा आराम देनेवाला था। समीप ही लगी हुई दूकानें, निकट सुरसरि-तीर, गङ्गामन्दिर और बाबा काली कमलीवालोंका कार्यालय आदि सभी बातें हमारे अत्यन्त संनिकट थीं। अतः गङ्गा-स्नान, पूजन, पुण्यस्थानोंके दर्शन, ब्राह्मण-भोजन आदि बातोंकी दृष्टिसे हमारा अन्य स्थानपर ठहरना असुविधाजनक होता।

आज बड़ी राततक जागते रहे, हमारे पण्डा श्रीचेतरामजीकी बिदाईकी तैयारीमें ही कुछ समय लग गया। रत्नकुमारीकी माताजी और गोविन्ददासकी भावज दो ऐसी महिलाएँ इस दलमें थीं, जिनकी दृष्टिसे किसी भी तीर्थ-यात्राका मुख्य उद्देश्य उस तीर्थपर अधिक-से-अधिक यथा-सामर्थ्य दान देना ही होता है और जबतक दान देनेवाला दान लेनेवालेकी संतुष्टिका अनुभव न कर ले, तबतक उसे पूरा-पूरा पुण्य नहीं मिल सकता। ये दोनों इस मतकी थीं। सब लोगोंकी एक बैठक होती, पण्डाजीको क्या बिदाई देना है, यह उस बैठकमें तय होता। एकमतसे तय हो जानेपर पण्डाजीको बुलाया जाता और उन्हें यह दक्षिणा सौंपी जाती। हमारे कुटुम्बसे गङ्गोत्तरी इसके पूर्व कोई नहीं आया था। अतः ऋषिकेशमें ही श्रीचेतरामजीको हमने अपने पण्डा स्वीकार कर लिया था और ऋषिकेशसे ही ये हमारे साथ थे। इन्होंने

हमारी गङ्गोत्तरी-यात्राकी व्यवस्थामें अत्यधिक श्रम उठाया था और हम आज यह बात मुक्तकण्ठसे स्वीकार करेंगे कि यदि चेतरामजीके सदृश परिश्रमी और इस ओरका पूरा-पूरा परिचय रखनेवाले हमारे पण्डा न होते तो गङ्गोत्तरीकी इस यात्रामें हमें अकथनीय कष्ट होते। इस दृष्टिसे भी सभी लोग इनसे संतुष्ट थे, फिर रत्नकुमारीकी माताजी विशेष संतुष्ट। जब याचकपर दाता संतुष्ट हो और वह दाता भी ऐसे समय, जब वह किसी धार्मिक भावनासे प्रेरित किसी धार्मिक धाममें है तो वह मुक्तहस्तसे दान देता है और ऐसी स्थितिका यह दान भी ऐसा होता है जिसमें दाताके प्रति याचकका स्वार्थ-प्रेरित संतोष और असंतोष जो समय-समयपर घटता-बढ़ता रहता है, इस क्रियाके होते ही असंतोषको पाटकर केवल संतोषको छा देता है। पण्डाजीको गङ्गा-स्नानके समय ही कुछ मुद्रा, रजत-पात्र और कुछ स्वर्ण मिल ही गया था। अब उनकी दक्षिणाका उपसंहार यह बिदाई उनको मिलनेवाली थी। रत्नकुमारीकी माताजीने पण्डाजीको कुछ वस्त्र, पात्र और कुछ रुपये इस बिदाईमें दिये और पण्डाजीसे पूछा, “आप संतुष्ट तो हैं ?” उन्होंने यात्रा सुफल करते हुए दक्षिणा स्वीकारी और कहा “परम संतुष्ट हूँ सब।”

इसके बाद हमलोग अपने विस्तरोंसे जा लगे। सारे दिन मौसम साफ रहा, कुछ शीत अवश्य थी, किंतु मजेदार, कँपकपीवाली नहीं।

दिनाङ्क १० जूनके प्रातःकाल उठते ही दैनिक कृत्यसे निवृत्त हो हमने गङ्गा-स्नान किये और आजका अपना शेष समय सत्सङ्ग, प्राकृतिक स्थलोंके निरीक्षण, योगी-महात्माओंके दर्शनों आदिमें लगानेका तय किया। कल हम यहाँका वह गौरीकुण्ड भी संख्या हो जानेके कारण नहीं देख पाये थे जिसके विषयमें हमने पूर्व ही अनेक बातें और कथाएँ सुन रखी थीं। लगभग ९ बजे हमलोग उप पार इन ऋषियोंकी पुरीमें पहुँचे और पहले श्रीप्रेमवर्णीजीकी कुटीमें जाकर उन्हें प्रणाम किया और गङ्गोत्तरीसे बिदा होनेकी आज्ञा माँगी। कुछ देर श्रीप्रेमवर्णीजीसे बातें हुई। तदनन्तर निकट ही

भागीरथीके उस गौरीकुण्डके दर्शनोंको हम गये जिसे देखनेकी लालसा कलसे लगी हुई थी ।

गौरीकुण्डके समीप पहुँचकर ज्यों ही हमारी दृष्टि इस कुण्डपर पड़ी, हम आश्चर्यचकित स्तम्भित-से रह गये । गौरी-कुण्डमें गङ्गाका पूरा प्रवाह अत्यन्त वेगसे गिरता है । यद्यपि गङ्गाकी धारा एक ओरसे ही आती है, परंतु इस कुण्डमें धाराके गिरते ही सारा प्रवाह अवरुद्ध हो कुण्डकी गुलाईके कारण गोल होकर तेजीसे घूमने लगता है । प्रवाहके इस घुमावके पश्चात् गौरीकुण्डसे फिर गङ्गाकी धारा आगे बहती है । जिस समय हम गौरीकुण्डके दर्शन कर रहे थे, उस समय रवि-रश्मियोंने कुण्डके नीरमें एक पूरे इन्द्र-धनुषकी रचना कर रखी थी । गङ्गाके तीव्र प्रवाह, कुण्डमें उसके घुमाव और प्रवाहके प्रपातके कारण धूमके सदृश उड़ते हुए जल-कण और इन्द्रधनुषने इस कुण्डको अनुपम शोभा प्रदान की थी । कुण्डके उस दृश्यको देख गोविन्ददासने कहा । यद्यपि वे संसारमें बहुत घूमे हैं, परंतु ऐसा अद्भुत दृश्य कहीं नहीं देखा । कुछ देर अपलक नेत्रोंसे अवाक हो हम इस दृश्यको देखते रहे । हमारे मस्तिष्कमें नाना कथाएँ, वार्ताएँ और चर्चाएँ चक्कर लगाने लगीं । हमारा मन अस्थिर हो भागीरथीके इस रहस्यभेदनके लिये व्याकुल हो उठा । अगणित सरिताएँ हमने देखी थीं, किंतु भागीरथीके सदृश आजपर्यन्त नहीं । महान् आस्तिक होते हुए भी आज एक बात और कहनेके लिये हम पाठकोंसे क्षमा चाहेंगे कि भागीरथीके सम्बन्धमें भी हमने जो वर्णन हमारे धार्मिक पुराणोंमें पढ़े थे उन्हें भी कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण और पुराणोंकी पुष्टके रूपमें ही हमने माना था । किंतु, भागीरथीका समूचे गङ्गोत्तरी मार्गमें और आज जो साक्षात्कार हमें यहाँ हुआ उससे हम हैरान थे । आजके इस साक्षात्कारमें यह क्षमता थी कि न केवल पौराणिक कथनोंको सत्य प्रमाणित कर दे वरं वह यह भी सिद्ध कर रहा था कि दैवी शक्तियों और प्राकृतिक परिणामोंका पक्का परिचय पुस्तकों या पुराणोंमें न पाया जाकर उनके दर्शनोंमें ही मिलता है । इस समय हमारे मस्तिष्कमें पौराणिक कथनोंसे गङ्गावतरण होने लगा । भागवत पुराणके पञ्चम स्कन्धके सत्रहवें अध्यायमें गङ्गावतरणकी कथा आयी है । उसके अनुसार त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णुने राजा बलिके यज्ञमें जब अपने विराटरूपसे पृथ्वीको नापा और उन्होंने अपने दाहिने चरणसे पृथ्वीको दबाकर जैसे ही बायाँ चरण ऊपर उठाया, तैसे ही वाम चरणके अंगुष्ठ-नखसे, ब्रह्माण्डके ऊपरका भाग

फटनेसे जो छिद्र हुआ, उस छिद्रमेंसे चरण-विहारिणी, भवभय-निस्तारिणी, गङ्गाजीकी जो ब्रह्मधारा ऊपर स्थित हुए ब्रह्माण्ड-के भीतर पैठी, वही धारा स्वर्ग-मस्तकसे उतरकर पृथ्वीमें उतरी । आगे उल्लेख है कि गङ्गाजीकी यह धारा राजा बलिके यज्ञसमय उपस्थित ब्रह्माण्डके भीतर छिद्रमें प्रविष्ट हुई तो भी वहाँसे सहसा पृथ्वीपर नहीं उतरी । बहुत बड़े काल अर्थात् दो सहस्र युगके पीछे स्वर्गमस्तकसे पृथ्वीपर गिरी ।

श्रीमद्भागवतमें गङ्गावतरणके सम्बन्धमें कुछ विस्तारसे उल्लेख हुआ है और आगे कहा गया है कि गङ्गा चार धाराओंमें सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामसे विभाजित होकर केसराचल आदि पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे उतरती प्रधान-प्रधान शिखरोंपर गिरती हैं । उसके पीछे इन सब शृङ्गोंसे क्रमसे नीचेको बहकर गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर गिरकर भद्राश्वखण्डके मध्यमें बहकर प्रथम पूर्वकी ओर लवणसमुद्रमें, चक्षु नामक धारा माल्यवान् पर्वतके शिखरसे निकलकर महावेगवती केतुमालखण्डके सम्मुख होती हुई पश्चिम दिशाके समुद्रमें आ मिली । भद्रा नामक धारा उत्तर दिशामें सुमेरुके शिखरसे गिरकर एक शिखरसे दूसरे पर्वतके शिखरपर होती हुई कुमुद पर्वतके शिखरसे चलकर नीलगिरि शिखरपर आयी, वहाँसे बहकर श्वेत पर्वतके शृङ्गपर, वहाँसे शृङ्गवान् पर्वतपर पहुँच नीचे गिरी और उत्तर कुरुदेशमें होकर क्षारसमुद्रमें मिलती है । अलकनन्दा नामक धारा भी इसी प्रकारसे पर्वतोंको तोड़ती-फोड़ती, ब्रह्मलोकमें गिरती, अगणित गिरिशृङ्गोंको लाँघती, तीव्र वेगसे चलती हेमकूट होती हुई भारतवर्षमें व्याप्त होकर दक्षिणकी ओर लवण समुद्रमें जा मिली ।

हमारे अन्य धार्मिक ग्रन्थोंके और श्रीमद्भागवतके उक्त कथनसे प्रमाणित है कि विष्णुपदीका विष्णुपदसे निःसरण होकर सहसा पृथ्वीपर अवतरण नहीं हुआ । बहुत कालतक वह स्वर्ग-मस्तकमें छिपी रही । स्वर्ग-मस्तक किसे कहते हैं—इसका भी संक्षिप्त उल्लेख श्रीमद्भागवतके इसी अध्यायमें हुआ है ।

हमारे अन्य पुराणों और कथाओंके अनुसार यह प्रमाणित है, वह इस देशकी सबसे प्राचीन सरिता नहीं है, वह इन ग्रन्थोंके कथनानुसार लायी गयी है ।

इन कथानकोंसे ओत-प्रोत हृदयसे हम आज गौरीकुण्डपर भागीरथीके इस भव्य रूपको निहार रहे थे । हमने अपनी इस यात्रामें यमुनोत्तरी-मार्गमें यमुनाके और गङ्गोत्तरी-मार्गमें गङ्गाके

जो दर्शन किये थे वे सारे दृश्य इस समय हमारी अन्तर्दृष्टिमें एक चित्रपटकी तरह घूमने लगे। कितना अन्तर था इन दो दर्शनोंमें। यमुनाका प्रवाह और गङ्गाकी गति कितनी विचित्र थी, कैसा अन्तर था जिसे आकाश-पातालका ही अन्तर कहा जा सकता है, क्यों न हो, यमुना यमुनोत्तरीसे निकली, गङ्गा गङ्गोत्तरीसे। दोनोंके दो पृथक् उद्गम। यद्यपि दोनों एक ही पिताकी दो पुत्रियाँ हैं तथापि दोनोंका भूमि-अवतरण दो भिन्न द्वारों, दो भिन्न मार्गों और दो भिन्न कालोंमें हुआ। यमुना कितने समय पूर्व आयी, इसका ठीक-ठीक प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी, इतना तो स्पष्ट है कि गङ्गाके बहुत पहले यमुनाका भूमि-अवतरण हुआ है। अतः यमुनाके इस दीर्घकालकी दूरी, पथकी दूरी, कार्यों और गन्तव्यकी दूरी, गङ्गाको पार करनी थी। यह तभी की जा सकती है जब कोई संकल्प-विशेष हो। गङ्गाके यहाँ और मार्गमें जो हमने दर्शन किये वे हमें स्पष्ट बता रहे थे कि गङ्गा कोई दृढसंकल्प-प्रेरित है और उसीकी पूर्तिमें पुरेजोश, उत्साहसे जुटी है। यमुनोत्तरीके मार्गमें यमुनाका प्रवाह हमने देखा। मैदानोंकी नदियोंकी तुलनामें पर्वतके वक्ष-पर बहती, इस सरिताके बहावमें वेग होना स्वाभाविक ही था, फिर जहाँ चट्टानें अवरोध बनतीं, यह वेग और तेज हो जाता। फिर दूर-दूरतक यमुनाका शीतल श्याम प्रवाह हमें देखनेको मिलता और कलकल करती कालिन्दी अपनी इसी अबाध गतिसे बहती रहती। किंतु, भागीरथी! ओह! भागीरथीका प्रवाह इसे प्रवाह कहें या तूफान! कहीं उद्देग बनकर, कहीं क्रोध बनकर और कहीं विरहकी विकलता लेकर बहता। इस प्रवाहकी गति विचारोंकी गतिसे भी तीव्र जान पड़ती और शब्द! कहीं मेघके गर्जन-सा, कहीं एक वाद्य-स्वर-सी सुरीली ध्वनिका और कहीं तुमुलनाद करता अन्तरिक्षमें शब्दायमान हो हमारे कानोंमें गूँजता। प्रवाहमें जहाँ-कहीं चट्टानें अवरोध बनतीं, भागीरथी रौद्ररूप धारण कर लेती, वह एक तूफानके सदृश तूफान न होते हुए भी तूफानी नदी बन जाती और बड़े वेगसे उन चट्टानोंको आत्मसात्-सा करती दौड़ी जाती। कितना भव्य, महान् और भयप्रद था धवलरूप-धारी भागीरथीका यह वेश। मनमें विचार उठा आखिर गङ्गा इतनी तेजीसे कहाँ दौड़ी जा रही है? इसने ऐसा कौन-सा महान् संकल्प किया है जिसकी पूर्तिके लिये यह इतनी उतावली है।

कथा है, राजा सगरके साठ सहस्र पुत्रोंने गङ्गाको लानेका प्रयत्न किया। परंतु इस प्रयत्नमें वे सफल न हो सके और उनका अन्त हुआ। उनकी सद्गतिके लिये भगीरथने घोर

तपस्या की और गङ्गा लानेमें वे सफल हुए। इसीलिये गङ्गाका नाम भी भागीरथी पड़ा। सतत प्रयत्न, कठिन परिश्रम और पुरुषार्थ-पूर्ण अन्वेषणसे बड़ी चीजें मिलती हैं। समुद्रमें गहरे पानीमें पैठनेपर ही मोती मिलते हैं। बड़ी-बड़ी और गहरी पाताल-फोड़नेवाली खानें खोदनेसे ही रत्न निकलते हैं और पर्वतोंके उदर फाड़कर ही खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं। बड़े प्रयत्नोंके बड़े फल। इसी तरह सगरके साठ सहस्र पुत्रोंके जीवन-बलिदान और भगीरथके उग्र तपके फलस्वरूप गङ्गाका मृत्युलोकमें प्रादुर्भाव हुआ। कड़ी मेहनत और घोर प्रयत्नसे प्राप्त वस्तुएँ, उनका आकार, उनकी गति और उनका जीवन बड़ा होता है। कभी-कभी उनका सँभालना भी मुश्किल हो जाता है। यह बात जो आजके वैज्ञानिक युगमें भी लागू है, गङ्गाके प्रादुर्भावके समय हुई। प्रश्न उठा—गङ्गाके वेगको, उनके आकार, उनकी गतिको कौन सँभालेगा। यदि कोई सँभाल न सका तो वे सीधी पाताल चली जायँगी। सगरके साठ सहस्र पुत्रोंके बलिदान और अपनी कड़ी तपस्यासे प्रभूत गङ्गाकी यह वाणी सुनकर भगीरथका मन भय और प्रयत्नकी असफलताकी आशंकासे भर उठा। उन्होंने फिर उग्र तपस्या प्रारम्भ की शिवकी।

अन्ततोगत्वा, भगीरथकी भक्तिसे प्रसन्न भगवान् विश्वनाथने जब देखा गङ्गाका वेग अत्यन्त भयानक होनेके कारण मृत्युलोकके लिये उनका निस्सरण रुका हुआ है तो चन्द्रमौलिने अपनी जटाएँ बिखेरीं और गङ्गाको समेट लिया। बादमें फिर भागीरथकी प्रार्थनापर एक सूक्ष्म धारा उन्होंने मृत्युलोकके लिये अपने जटा-जूटसे निस्सृत कर दी। यह वही धारा है जो आज इन गिरिखण्डोंको आप्लावित करती अपना मार्ग स्वयं बनाती भारतकी भाग्यरेखा बनी बह रही है।

ततो यथोक्तं गमिता हिमाद्रि-

मानन्दयन्ती पुनरात्मकृत्यैः ।

पुनश्च लोकं परितर्पयन्ती

सर्पत्यहो भारतभाग्यरेखा ॥

भागीरथका प्रयत्न सफल हुआ, संकल्प पूरा हुआ, किंतु, जिन कारणोंसे भगीरथने इतनी कठिन तपस्या की थी उनकी पूर्तिकी सारी जिम्मेदारी अब भागीरथीपर आ गयी। जिस तरह आविष्कार-कर्ताकी आकाङ्क्षाओंको मूर्तरूप उसका आविष्कार देता है, उसी तरह अब भागीरथीको राजा सगरके साठ सहस्र पुत्रोंको

सद्गति देकर भारतकी कल्याणदायिनी बनना था, इसके लिये उन्हें ज्ञानी, ध्यानी, मनीषियोंकी साधनामें सहभागिनी बनना था और इससे भी महत्वपूर्ण उन्हें जो कार्य करने थे इस देशकी धार्मिक एकताके, सांस्कृतिक सामञ्जस्यके और आर्थिक उत्कर्षके। इन उद्देश्योंसे उन्हें विभिन्न सरिताओंको अपनेमें समाहितकर धार्मिक संगमद्वारा अपने तटपर तीर्थस्थलों और विभिन्न देव-मन्दिरोंका निर्माण कर सर्वसाधारणमें सांस्कृतिक तथा अपने पानीसे भूमिको प्लवित कर उसे उर्वरा बना भारतके आर्थिक उत्कर्षकी यह महान् मंजिल तय करनी थी। फिर इन अनन्त भावनाओंसे भरे अनन्त कार्योंको सम्पन्न करते हुए अपने इष्टदेवके विरहकी व्यथाको हृदयमें दबये वियोगिनी गङ्गाको पुनः प्राप्त करना था। अपने उन प्रभु-पदोंको, जिनसे विलग हो लोक-कल्याणके कारण विष्णुपदीको यहाँ आना पड़ा और जो पद उसे सागरमें समानेसे ही प्राप्त हो सकते थे, जिस सागरमें भगवान् शेषशायी विष्णु निवास करते हैं। प्रीतम-प्राप्तिकी इस दौड़में विष्णुपदी यमुनासे पीछे थीं, अतः सर्वप्रथम प्रभुपद-स्पर्शकी भावनासे विकल भाव और व्यथित हृदयसे भागीरथी बह रही थी। इसीलिये उनके संकल्पमें वज्रकी दृढ़ता थी, गतिमें औंधी थी, वेगमें तूफान था, स्वभावमें रोष था और भावमें विकलता थी।

गङ्गाके विषयमें यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है। कुछ इंजीनियरोंके मतानुसार गङ्गा एक स्वाभाविक नदी न होकर एक नहर (कैनाल) है। यह बात हमें धरासूसे दो मील नीचे नगुनगढ़, इसके पश्चात् भलड्याना और सयासूके बीच और तदुपरान्त टेहरीके राजमहलके नीचे गङ्गाका प्रवाह जो अभी भी ठीक नहरके सदृश जान पड़ता है, देखनेसे मालूम होती है, फिर नदियाँ अपने-अपने उद्गमस्थानसे प्रायः किसी एक दिशामें बहती हैं। गङ्गा, गंगोत्तरी हिमानीसे तेईस मील उत्तरकर एकदम उत्तरकी ओर बहती हैं, फिर गंगोत्तरीसे भैरोंघाटीतक लगभग सात मील उत्तर-पश्चिममें। इसके पश्चात् लगभग नौ मील हरसिलतक पश्चिममें जाती हैं और फिर हरसिलसे आगे एकदम दक्षिणामुमुख हो जाती हैं। गङ्गा कहीं जानेवाली थीं और क्या कहीं उनके भक्त भागीरथ उन्हें ले गये। आज इस सम्बन्धमें कुछ कहा जाना सम्भव नहीं है। परन्तु, इतना निश्चित है कि भागीरथ सूर्यवंशी राजा थे। सूर्यवंशका उत्थान आधुनिक दुआबमें हुआ, अर्थात् गङ्गा-यमुनाके बीचकी भूमि, जो दुआब आज भारतवर्षके सबसे उपजाऊ क्षेत्रोंमें है। यदि

गङ्गा हरसिलसे दक्षिणामुमुख हो दुआबके क्षेत्रसे न बहती तो दुआब वैसा ही मरुस्थल हो जाता जैसा आज राजस्थान है। फिर भारतीय संस्कृतिके उत्थानके सबसे प्रधान केन्द्र उत्तर प्रदेशको भी वह स्थान न मिलता जो उसे आज प्राप्त है। अतः जहाँके भागीरथ थे, उस भूमिको आर्थिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे सम्पन्न, हरा-भरा और उपजाऊ बनानेका उनका अभीष्ट स्वाभाविक ही था। भागीरथीके अवतरणकी जो कथा है उसमें भी उल्लेख आया है कि रथारूढ़ भागीरथ आगे-आगे चलते थे और पीछे उनके निर्देशनमें भागीरथी पर्वतोंको काटती, शिलाओंको चूर-चूर करती वेग और द्रुत गतिसे बढ़ती जाती थीं।

भागीरथीकी महात्ताकी हमें यहाँ एक बात और याद आयी। गङ्गाके नीरमें एक बड़ी विशेषता और है। यह है सैकड़ों वर्षपर्यन्त पात्रमें रक्खा रहनेपर भी उसका निर्मल बना रहना। उल्लेखनीय है कि गोविन्ददासके यहाँ लगभग सौ वर्षसे भी अधिक समयका गङ्गाजल अभी भी अपने शुद्ध रूपमें सुरक्षित है। जब कि दूसरी सरिताओं, तालाबों अथवा कुओंका पानी दूषित हो जाता है। यहाँतक कि कीड़े पड़ जाते हैं। भागीरथीके नीरकी इस निर्मलताका कारण बहुत दूरतक उसके प्रादुर्भावकी पवित्र कथाओंको लेकर लोग उसका दैविक गुणसम्पन्न होना मानते हैं। विष्णुचरणसे निस्सरण होनेके कारण विष्णुपदीमें वह भगवत्-पवित्रता आ गयी है जो मलिन-से-मलिन वस्तुओंको शुद्ध कर दे और अधम-से-अधम पातकी प्राणियोंको भी तार दे। लोगोंका ऐसा ख्याल है। और अपने इसी विश्वासके कारण लोग गङ्गाके प्रवाहमें डुबकी लेकर अपने पाप धोते हैं। तथा मृत आत्मीयोंकी अस्थियोंको गङ्गामें विसर्जित कर यह मानते हैं कि देह-त्यागी जीवकी इससे सद्गति होकर उसे स्वर्ग प्राप्त होगा। भागवतमें भी उल्लेख है कि मृत व्यक्तिकी हड्डियाँ जबतक गङ्गामें रहती हैं, तबतक उस जीवका स्वर्गमें वास रहता है। इन कथाओंका कुछ भी अर्थ हो, किंतु इन्हीं कथाओंसे प्रेरित हो हर आस्तिक भारतीय, यहाँतक कि निर्धन-से-निर्धन व्यक्ति भी अपने किसी आत्मीयके निधनपर साधन जुटा उसकी अस्थियाँ गङ्गामें विसर्जित करने जाता है और यहाँपर उल्लेखनीय है कि प्रयाग पहुँचकर वह स्वयं तो स्नान भले ही गङ्गा और यमुनाके संगममें कर ले किंतु, अपने पुरखोंके पूल (अस्थियाँ) वह इस संगममें छोड़नेकी भूल कभी नहीं करता। ये अस्थियाँ तो भागीरथीके ही प्रवाहमें विसर्जित की जाती हैं। इस दृष्टिसे

गङ्गाको हमारे देशमें जो धार्मिक महत्त्व प्राप्त है, वह एक श्रद्धाकी वस्तु है, तर्ककी नहीं। फिर भी, कुछ वैज्ञानिकोंका गङ्गाके नीरकी इस पवित्रताके सम्बन्धमें यह मत है कि वह हिमालयकी वनौषधियोंको अपने साथ बहाकर लाती हैं और इन अमोघ ओषधियोंका उसमें मिश्रण ही उसके नीरकी इस स्थायी शुद्धताका कारण है। किंतु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि गङ्गा ही क्या यमुना, अलकनन्दा और मन्दाकिनी तथा अन्यान्य अनेक सरिताएँ भी तो हिमालयके इसी क्षेत्रसे प्रवाहित हैं और इस नाते इनके प्रवाहमें भी वनौषधियोंका वैसा ही समान मिश्रण होता है जैसा गङ्गामें; फिर जलकी यह स्थायी पवित्रता यदि वनौषधियोंका मिश्रण होना ही है तो वह इन सरिताओंको क्यों प्राप्त नहीं है। अतः वैज्ञानिकोंका गङ्गाके विषयमें यह मत युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। सच तो यह है कि संसारके बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक भी अबतक यह पता नहीं लगा पाये कि गङ्गाके नीरकी इस स्थायी पवित्रताका रहस्य क्या है?

भागीरथीकी इस अनन्त महिमा और अगणित कथाओंसे भरे हमारे मन आज भक्तिपूरित थे। निःसंदेह धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टिसे भारतमें भागीरथीका जो स्थान है, संसारके किसी भी देशमें किसी भी नदीका नहीं।

हमलोगोंकी समाधि खुली और गौरीकुण्डकी गङ्गाको

प्रणामकर श्रीव्यासदेवजीके योग-निकेतन पहुँचे। श्रीव्यासदेवजी जिनसे हमारा परिचय गंगनानीमें हो गया था, यहाँ मौजूद थे, श्रीप्रेमवर्णीजी भी इस समय उपस्थित थे। कुछ अन्य श्रद्धालु भक्तजन भी थे। श्रीव्यासदेवजीने हमें आसन दिया और चल रहे सत्संगसे हमलोग लाभ उठाने लगे। रत्नकुमारीने भी व्यासदेवजीसे पुनर्जन्मकी पुष्टिमें क्या प्रमाण हैं, बतानेका निवेदन किया। श्रीव्यासदेवजीने कुछ तथ्य इस सम्बन्धमें रखे किंतु, समयके बन्धनके कारण विस्तारसे इस विषयपर हम उनसे चर्चा न कर सके और दोनों महानुभावोंसे विदा हो अपने मुकामपर लौट आये।

हमलोग योग-निकेतनसे वापिस लौटकर सीधे अपने मुकामपर आये, समय हो गया था अतः यहाँ स्थित अन्य साधु-महात्माओंके दर्शन हम न कर पाये। मुकामपर भोजनादि किये और भागीरथीके उस तीरपर जहाँ कल हमने स्नान-पूजन किया था, विदा लेने पहुँचे। भागीरथीको कुछ भोग भेंट किया और सर्वसिद्धिदायिनी विष्णुपदी भागीरथी गङ्गेकी निम्न श्लोकसे वन्दना कर १० जूनके अपराह्नमें बिदा हुए—

ओं नमामि गङ्गे तव पादपङ्कजं

सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम् ।

भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं

भावानुसारेण

सदा

नराणाम् ॥

भगवान्की अहैतुकी कृपाका चमत्कार है

भगवान्ने अपनी अहैतुकी कृपासे आश्चर्य-लीला की है, तभी तो मेरा मन भगवान्का हो गया है, मेरी बुद्धि भगवान्की हो गयी है। इन मन-बुद्धिके द्वारा अब जो कुछ भी विचार, संकल्प, निश्चय आदि होते हैं, सब भगवान्के ही होते हैं। इनकी प्रत्येक चेष्टा तथा क्रिया भगवान्की ही चेष्टा और क्रिया है। ये मन-बुद्धि भगवान्के यन्त्र हैं, यह जीवन भगवान्का यन्त्र है। भगवान् ही यन्त्री हैं। भगवान्के ही भगवत्स्वरूप मन-बुद्धि इन मन-बुद्धिके द्वारा अपना कार्य कर रहे हैं। मेरा न कोई संकल्प है, न विचार है, न निश्चय है और न मैं ही हूँ। उनके समर्पित ये सब कुछ उनके हो गये हैं। भगवान् सदा सर्वदा अपने कार्यके लिये इन सबका उपयोग करते हैं। यद्यपि ये सभी अत्यन्त तुच्छ तथा नगण्य हैं, परंतु भगवान्के द्वारा स्वीकार किये जानेपर, अपने बना लिये जानेपर ये धन्य हो गये हैं, सफल-जीवन हो गये हैं, इनका गौरव हो गया है। तुच्छ धूलकण भी जैसे भगवान्के चरणोंका स्पर्श पाकर लोक-पावन हो जाता है, वैसे ही ये भी पावन हो गये हैं। यह सब उनकी अहैतुकी कृपाका ही चमत्कार है।

वैज्ञानिक संजीवनी (Vaccine Honey)

(लेखक—श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

[गताङ्क पृष्ठ ८८६ से आगे]

बहुरूपिये

जबसे दर्दशामक एस्पिरिनकी गोलियाँ बनीं और लोगोंके टांसिल कटने लगे और कुछ लोगोंको (उसके परिणामस्वरूप) पोलियो होने लगा या उनके खूनके असरसे जन्मे बच्चोंको पोलियो होने लगा और ज्यों-ज्यों डिब्बोंमें पैकबंद रासायनिक रंगीन मिठाइयोंका प्रचार बढ़ा और पोलियोका टीका लगने लगा, तभीसे पोलियो रोगने अपना सिर अधिकाधिक ऊँचा उठाया। यह देखकर ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशनके डॉक्टरोंने परस्परके अनुभवसे एस्पिरिन और पोलियोके विषयमें अन्योन्याश्रित सम्बन्धके खोजकी बार-बार चर्चा की है। लोग जरा-सी भी पीड़ा होनेपर एस्पिरिन लेते हैं और रोग दबते हुए गम्भीर रूप धारण करता है। एस्पिरिनकी खपत बढ़ती जाती है, फिर आश्चर्य करते हैं कि पोलियो रोग क्या चीज़ है? क्यों हो गया और इससे मुक्ति किस दवासे मिले! पेनिसिलिनका चमत्कार भी इतना विश्वव्यापी है कि अमेरिकामें उसकी वार्षिक खपत चार सौ टनके लगभग है। अनेक प्रकारकी दवाइयाँ खाते-पीते इंजेक्शन लेते लोगोंमें अब विचित्र लक्षण पैदा होने लगे हैं। वैज्ञानिकोंके भयावह प्रचारसे, दवानिर्माताओंके प्रचारसे और सरकारी आदेशसे दुनियामें दवाओंकी जबरदस्त बाढ़-सी आ गयी है और भोली अन्धविश्वासी जनता, अज्ञ वैज्ञानिक और सरकारें—सब उसी बाढ़में बहे-डूबे जा रहे हैं दुःखके भवसागरसे पार उतरनेके लिये। चिट्ठियोंपर, संस्थाओंमें, सरकारी दफ्तरोंमें, स्टेशनोंपर, यत्र-यत्र सर्वत्र अनेक प्रकारके पोस्टर और छोटे-बड़े उपदेश मिलेंगे। क्षयनिरोधके लिये बी० सी० जी० टीका लगाओ, मलेरियासे इस प्रकार बचो, हैजेका टीका लो, पोलियो-शोधमें चंदा दो, अभियानमें मदद दो। यह सब देखकर २९ सितम्बर १९५६के ब्रिटिश मेडिकल जर्नलमें एक डॉक्टरने लिखा था—इन नये-नये नामोंसे प्रकट होनेवाली दवाओंकी बाढ़को रोकनेके लिये क्या कुछ नहीं किया जा सकता? कुछ दशकों पहले रोगियोंके लिये डॉक्टर नुस्खे लिखते और उनको कम्पाउण्डर बनाया करता था, अब तो पेटेंट दवाइयाँ बन गयी हैं। डॉक्टर अब

दवानिर्माताओंके गुलाम बन गये हैं। 'Can nothing be done to stem the spate of more and more drugs with similar sounding names but widely different?' रोगनिरोधक टीके या इलाजसे वास्तवमें रोग रुकता नहीं, उसका आघात कुछ हल्का-सा मात्तूम होता है जैसे कि नशा करनेवाला किसी दूसरे होशमें रहता है। प्रसिद्ध डॉक्टरी अखबार 'लान्सेट' के सितम्बर २९, १९५६ के अङ्कमें, डिप्थीरियाका टीका लगे एक ४ सालके लड़केको डिप्थीरिया हो जानेका समाचार छपा था, जिसका अनेक प्रकारसे इलाज किया गया और वह बच सका। लान्सेटमें छपा था—'टीका लगानेपर डिप्थीरिया होना साधारण बात है, गम्भीर आक्रमण असाधारण है' 'Diphtheria is relatively common in the inoculated, but severe attacks are uncommon' फिर टीका लगानेमें कौन-सी बुद्धिमानी है? फिर भी प्रचार किया जाता है "Protect your child against diphtheria by immunisation." रोगप्रसारकी वैज्ञानिक व्यूहरचनामें पशु-पक्षी भी बुरे शिकार बन जाते हैं। पशुचममें लोग गाय, भैंस, मुर्गियाँ, सूअर पालते हैं और एंटीबायोटिक दवाइयाँ, हार्मोन तथा अन्य रसायन उन्हें भोजनमें खिलते हैं, जिससे वे अधिक दूध दें, अधिक अंडे दें, मोटे हों और मांसका अधिक मूल्य मिले। किसी पशुको कोई हल्का रोग हुआ तो सब पशुओंको वूचड़खानेमें भेजकर अथवा इंजेक्शन देकर जबरदस्ती मार डाला जाता है, गड्ढोंमें फेंककर मिट्टी डाल दी जाती है। इसका समाचार अक्टूबर ६, १९५६ के 'न्यू स्टेट्समैन' में छपा था। नीरोगी निरपराध गायें, उनके सद्योत्पन्न एक घण्टेके बछड़े भी मार डाले गये, गड्ढोंमें सड़ने डाल दिये गये, उनपर चूना-मिट्टी डाल दिया गया। उधरसे लोगोंका आना-जाना रोक दिया गया, मोटरोंका यातायात भी बंद कर दिया, विशेष दूरीके क्षेत्र तक लोगोंका चलना-फिरना, वहाँ फूल-फल चुनना भी बंद कर दिया गया, जिससे कि हाथ-पाँवसे, मोटरके पहियोंसे कीटाणु फैल न सकें।

विशेषज्ञ (?)

कुछ वर्षों पहले जब रोगी किसी डॉक्टरके पास जाता, तब डॉक्टर उसकी पूरी परीक्षा करते और दवाइयोंके मिक्सचरका नुस्खा लिखते थे जो वहीं ताजी बनायी जाती थी; किंतु शरीरके अलग-अलग अङ्गोंके लिये विशेषज्ञ जबसे पैदा हुए, तबसे रोगियोंकी मनोवृत्तिपर विशेषताका आकर्षण हुआ और अब पूरी परीक्षा करानेके लिये अनेक विशेषज्ञों(?) के पास जाना पड़ता है। एक डॉक्टर एक अङ्गकी परीक्षा और इलाज बताकर, दूसरे अङ्गकी जाँच और इलाजके लिये अन्य कई डॉक्टरोंके पास भेजता है। एक मुर्देको जैसे कई गिद्ध, चील, कौवे, कुत्ते, गीदड़ नोचते हैं, वैसा ही हाल इन रोगियोंका होता है। उन्हें सबकी अलग-अलग फीस और इलाज या निदानका मूल्य चुकाना पड़ता है, मानो एक डॉक्टर दूसरे अङ्गके विषयमें कुछ न जानता हो, अथवा उन्होंने मानव-शरीरके अङ्गोंको आपसमें समझौतेसे बाँट लिया है। डॉक्टरी अखबार 'लान्सेट' १३ अक्टूबर, १९५६के अङ्कमें 'दि ग्रेटर मेडिकल प्रोफेशन' शीर्षक इस विषयका एक लेख छपा था। एक खिचड़ी बनानेके लिये कई बावर्ची! सबका मसाला पड़नेसे खिचड़ी बनती है? नतीजा यह होता है कि कल जो निदान किया गया था, आज इलाज बदल दिया जाता है। इस सम्बन्धमें, मेडिकल साइंसके बदलते हुए रूप और सिद्धान्त तथा डॉक्टरों, विशेषज्ञोंके मतों अनुभवोंमें भिन्नताका विचार करते हुए 'बुलेटिन ऑफ द नेशनल असोसिएशन फार प्रिवेन्शन ऑफ टुबरकुलोसिस' 'क्षयरोगनिरोधक राष्ट्रीय संस्था' के मासिक पत्र, अक्टूबर १९५६ (इंग्लैंड) में छपा था—'शुद्ध चिकित्सापद्धति कोरी कल्पना है, सिद्धान्त या व्यवहारमें कभी आदर्श नहीं बन सकती, बनानेका प्रयत्न भी न करना चाहिये, यदि कोई ऐसे साहित्यकी रचना करे भी तो इससे उसका मानसिक दोष प्रकट होगा।' 'The idea of pure medical science is chimera. Medicine can never be an abstract science, and it should not attempt to become so. Medical literature of this sort may be in reality the symptom of an intellectual malaise.'

दूढ़ते हैं

किसी भी रोगीका निदान और इलाज करनेमें डॉक्टरोंकी चतुरता और यन्त्रोंका भरोसा कितना किया जाय। डॉक्टरी अखबारोंमें मरनेवाले डॉक्टरोंके नाम छपा करते हैं, वे

कुछ पचास वर्षके आस-पास ही उम्रवाले होते हैं और कोई तो तीस-पैंतीसमें ही दुनियाँसे उठ जाते हैं। वे स्वयं अपना इलाज या निदान नहीं जान पाते, नहीं कर पाते, फिर दूसरोंके निदान या इलाजके विषयमें उनकी विश्वासाका क्या भरोसा किया जाय! २७ अक्टूबर १९५६ के ब्रिटिश मेडिकल जर्नलको उठाकर देखिये और मरनेवाले डॉक्टरोंकी उम्र पूछिये। ठीक निदानके विषयमें शंकाओंका उत्तर भी उसी अंकमें 'गाई हास्पिटल' के बड़े चिकित्सककी कलमसे इस प्रकार छपा मिल जायगा—

'How often are we wrong? One searches in vain for precise information pointing to the error-proneness of physicians, surgeons and general practitioners. Some indication of consultant fallibility is offered by Scandinavian analysis based on a thousand consecutive necropsies. This reveals 67 completely faulty diagnoses and a higher number of incomplete assessments of the morbid process during life.'

अर्थात् जीवित रोगियोंमें ६७ प्रतिशतसे अधिक लोगोंका निदान गलत और अधूरा होता है और मर जानेपर मुर्दोंकी चीर-फाड़ करनेपर ही सही निदान पाया जाता है, तब अन्धविज्ञानी बुद्धि और यन्त्रोंके चमत्कारका भण्डाफोड़ हो जाता है, इस वक्तव्यकी पुष्टि आगे चलकर 'मेरीलिबोन मर्करी' ९ नवंबर १९५६ में प्रकाशित समाचारसे होती है—'एक व्यक्ति बीमार रहता था, डाक्टरों इलाज करता था, अस्पतालमें एक्स-रे लिया गया, उसकी पूरी जाँच हुई थी, डाक्टरोंको उसके रोगका कोई पता न चला, उसका ऑपरेशन भी हुआ था, फिर भी उसका न तो कुछ निदान हो सका, न इलाज। डाक्टर कहते, सब ठीक हाल है। परंतु अपना दर्द तो वही जानता था, लाचार होकर उसने आत्महत्या कर ली। लाशकी चीर-फाड़से परीक्षा हुई, उसका दिमाग ठीक पाया गया, किंतु उसकी छातीमें कैंसर था, जिसका जीते-जी न तो निदान हो सका, न इलाज हो सकता था। वह सब इलाज कराकर, चीर-फाड़ कराकर डॉक्टरोंद्वारा कुछ रोग नहीं है, प्रमाणित होनेपर जान-बूझकर मरा। मुर्देमें कैंसर पाया गया। वह

कब हो गया ? मरनेके बाद ? डॉक्टरी प्रमाण, निदान और इलाजका यह परिणाम !

१८ नवंबर १९५६ के लन्दन 'सण्डे पिक्टोरियल' में 'छुरीसे सुखी' (Knife Happy) शीर्षक एक रहस्यपूर्ण लेख छपा था, जिसमें संसारके प्रसिद्ध सर्जनने पेरिसमें लेखकसे मुलाकात होनेपर स्वीकार किया था। जीवनभर ऑपरेशन करनेमें उसके हाथसे कितने अनावश्यक अङ्गोंको चीर-फाड़-काटकर फेंका गया, सबका अनुभव अपनी पुस्तक-में लिख रहा है जो कुछ समय बाद प्रकाशित होगी। लन्दनसे प्रकाशित 'एम्पायर न्यूज' के २५ नवंबर १९५६ के अंकमें छपा था—'पार्लियामेंटके एक मेम्बरने वक्तव्य प्रकाशित किया है—'जुकाम-सर्दी हो जाय तो सरकारी रुपया मत छींको।' तात्पर्य यह था कि दस सालसे सर्दी जुकामकी दवा खोजनेके लिये सेलिस्वरी हारवर्ड हास्पिटलमें २६ लाख रुपये खर्च हो चुके हैं, यदि उस खोजसे कोई लाभकारी परिणाम न निकला तो वह अस्पताल बंद कर दिया जायगा। अगले वर्ष सरकारी स्वास्थ्यका बजट सम्भवतः ८५ करोड़ रुपयोंका होगा, इनका उपयोग बहुतकर खॉसी-सर्दी—छातीके रोगोंमें विशेष मात्रामें होगा। इसके बाद एक डॉक्टरने ८ दिसंबर १९५६ के डाक्टरी अखबार 'लान्सेट' में लिखा था 'कफ निकलना, खॉसी होना मनुष्योंमें स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इंग्लैंडके लोग सुबह उठकर अपनी छाती साफ करने, कफ निकालते समय बड़ी जोरसे खॉसते-खखारते आवाजें करते हैं, मेरे कई रोगी तो रोज आधसे एक घंटेतक समय लगाते हैं, और एक डॉक्टरने तो अपने रोगियोंको दो घंटेतक खॉसते, खखारते, कफ निकालते देखा था। इन सब दवाइयों, डाक्टरों, चिकित्सा-विज्ञान और स्वास्थ्य-मन्त्रालयद्वारा करोड़ों रुपयोंका बजट माँगने और खर्च करनेका क्या मूल्य ? जो सब रुपया जनतासे वसूल होता है, जनताको उसके बदलेमें क्या मिलता है ? भारतमें भी वही हाल है, क्योंकि रोग-निरोध और इलाजमें भारत आज पश्चिमका ही चेला है। अतएव इस सम्बन्धमें प्रत्येक नागरिक और स्वास्थ्य-अधिकारीको विचारकर निश्चय करना चाहिये कि यह अन्धचक्र कबतक चलता रहेगा और इसका परिणाम आजको देखकर आगे क्या होगा ?

राजबूटी

तमाखू वनस्पति है परंतु भोजन नहीं है, मिठाई नहीं

है, दवा नहीं है, तथापि लोग सैकड़ों वर्षोंसे तमाखू खाते हैं, पीते हैं—कड़वी लगती है, थूक देते हैं, पुनः चबाते हैं; पीते हैं धुआँ बनाकर, कड़वा लगता है, फूँक देते हैं, पुनः पीते हैं। तमाखू सूँघते हैं, सहन नहीं होती, छींक देते हैं, पुनः सूँघते हैं। मानव कैसा विचित्र प्राणी है। इसीका बड़ा व्यवसाय है करोड़ों, अरबों रुपयोंका ! मजदूर, व्यवसायी, बाहक और सरकार सबके पेट और पेटि भरती है यह तमाखू, केवल एक व्यर्थ व्यसन !

अब वैज्ञानिक कहते हैं, तमाखूसे छाती-पेटमें रोग होते हैं, परंतु डॉक्टर और वैज्ञानिक—प्रायः सभी पीते हैं, ऊँचे दर्जेकी सिगरेट ! इस तमाखूसे होनेवाली घातक हानिको जानकर भले ईमानदार डॉक्टरोंने इसके विरुद्ध प्रचार किया है। 'ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशन' के वार्षिक सम्मेलनमें तमाखू पीनेपर रोक लगा दी गयी थी, इस प्रतिबन्धसे अच्छा प्रचार हुआ, दूसरे व्यावसायिक सामाजिक सम्मेलनोंमें भी इसका अनुसरण किया गया। डॉक्टर लोग अब तमाखूको बड़ी शंकासे देखने और गम्भीरतासे विचार करने लगे हैं।

सभी वस्तुओंके समान तमाखूके विकासका भी इतिहास है। सोलहवीं सदीमें तमाखूको 'सर्वरोग-हर' बूटी माना जाता था। जैसा कि आजकल लोग एंटीबायोटिक दवाइयोंको मानते हैं, इसे राजबूटी माना जाता था। हरएक साधारण अथवा जटिल रोगोंमें इसका अन्तर्वाह्य प्रयोग किया जाता था; इसे पारस पत्थर माना जाता था, सब रोगोंकी एक बूटी ! कैंसर, क्षय, उपदंश, प्लेगमें इससे इलाज किया जाता था। इसे वनस्पति मानकर इसकी खुराकें दी जाती थीं। इसका आध पाव रस पीनेसे शरीरकी पूरी भीतरी सफाई और आँखोंपर डालनेसे आँखोंकी सफाई होती है—यह साधारण नुस्खा सबको कई देशोंमें कई सौ वर्षतक प्रचलित रहा। इसका लोगोंकी देहके भीतर-बाहर क्या असर होता था, भुक्तभोगी जानें। लोग इसके रससे गरारे करते, मलहम बनाते, पट्टी बाँधते, रेचकरूपमें लेते, वमन करने या कफ-शुद्धिके लिये प्रयोग करते, आँतोंको साफ करनेके लिये श्वास-फुँकनी नलीसे उसे आँतोंमें पहुँचाया जाता था; हिस्टीरिया और स्नायुरोगोंमें ऐसे अनेक प्रयोग शाही उपचारक भी करते-बताते थे। इन सब साधनोंका परिणाम देखकर तमाखू बदनाम और बहिष्कृत हो गयी। उस जमानेकी ये बातें सुनकर तो जी मिचलाने लगता है, अब दवाके रूपमें इसका उपयोग निषिद्ध है, परंतु आदतके

गुलाम अपनी मर्जीसे अपने लिये कुछ भी करें। व्यसन और व्यवसायके रूपमें तमाखू महत्वपूर्ण है और सम्यताके शामक और मतवाले साधनके रूपमें यह आवश्यक रिवाज बनकर अमीर-गरीब सभी इसको बार-बार चूमते-चूसते हैं। आजकल कुछ डॉक्टर पेशाबद्वारा भी इलाज करने लगे हैं। स्वयं रोगीके ताजे पेशाबका इंजेक्शन उसे देते हैं, पिलाते हैं और तीन-चार दिन, आठ दिन पुराने अतिदुर्गन्धित पेशाबकी मालिश शरीरपर करते हैं। कीटाणुवादके सिद्धान्तसे हरएक रोगके इलाजमें या रोग रोकनेके लिये उस रोगीके रक्त, मवाद, बलगम या मलसे कीटाणुओंकी खेती अन्य प्राणियों—चूहे, बंदर, मेंढ, गाय, बैल, घोड़ा, सूअर आदिमें करके पुनः उनके रक्त, रस, मवाद खींचकर रोगी या स्वस्थ मनुष्यको लगाये जाते हैं। जैसा तमाखूके प्रति आज विचार बदल रहा है, क्या इन घृणित विषाक्त वस्तुओंके प्रति कभी इनकी आँखें खुलेंगी? दीर्घकालतक इन सबका अनुभव लेकर बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंने इस पद्धतिको व्यर्थ एवं घातक हानिकर सिद्ध कर दिया है, फलस्वरूप प्रत्यक्ष दिख रहा है कि जितना ही रोगनिरोधका अभियान और इलाज किया जाता है, रोग अधिक फैलता जा रहा है, नये रोग पैदा हो रहे हैं और डॉक्टरी खोजका व्यवसाय बढ़ रहा है। नयी-नयी पेटेंट दवाइयोंके नये-नये छोटे-बड़े कारखाने खुल रहे हैं, रंग-विरंगी टेबलेटोंको भड़कीले लेबल लगी शीशियों तथा पैकेटोंमें भरकर विज्ञापनोंद्वारा उनका प्रचार किया जाता है और स्वास्थ्यरक्षके नामपर एक भयानक लूट मची हुई है। यह है घातक वैज्ञानिक स्वार्थवाद !

मनुष्य अमर है

१९ फरवरी १९६० को लॉस एंजलीस अमेरिकाका रायटरका मेजा हुआ समाचार 'नार्दर्न इण्डिया पत्रिका'के २० फरवरीके अङ्कमें छपा है कि रसायन विषयपर शोध करनेवाले नोबेल पुरस्कारविजेता डॉ० लुई पॉलिगने दक्षिण कैलिफोर्निया विश्वविद्यालयमें एक भाषणमें बताया कि मनुष्य अमर है, क्योंकि उसके तन्तुकोष अपनी मरम्मत स्वयं कर लेते हैं; पर मनुष्य अनेक व्यसनोकी आदतमें पड़कर स्वयं अपने शरीरपर लगातार आघात करता रहता है जैसे तमाखू पीनेकी आदत। एक पैकेट सिगरेट नित्य पीनेसे पञ्चमांश आयु घट जाती है। इसके बदले अल्कोहोलकी एक खुराक नित्य पी जाय तो आयु बढ़ सकती है।

MAN IS QUITE IMMORTAL

Los Angeles, Calif. Feb. 19. 1960

Dr. Louis Pauling, Nobel Prize Winner for Chemistry, said yesterday: Theoretically man is quite immortal, his bodily tissues replace themselves. He is a self-repairing machine and yet he gets old and he dies, and reasons for this are still a mystery.

Pauling was giving a lecture at the University of Southern California. He said that one of the reasons for man's ageing was that he was constantly inflicting brutal insults which it was not supposed to receive. The result of these constant recurrent insults is ageing and death. An example of these insults he cited smoking of cigarettes. He estimated that one packet of cigarettes per day shortened life by one-fifth. But he added, the length of life could be increased by the moderate consumption of alcoholic drinks, one or two cocktails per day.

मस्ताने-मतवाले बनो

लाखों रुपये अपने शोधके लिये पुरस्कारमें पाये हुए इस वैज्ञानिककी बुद्धिका तमाशा तो देखिये कि तमाखूको निकालकर ये दुनियाके गलेमें अल्कोहोल मतवाला-मस्ताना बनानेवाली शराब उड़ेलना चाहते हैं। यह हुआ व्यवसाय बढ़ानेका विज्ञापन ! प्रकट होता है आपको तमाखू कड़वी लगती है और यह शराब आपके मुँह लगी है। मेडिकल डिक्शनरीमें अल्कोहोलके विषयमें लिखा है—अल्पमात्रामें अल्कोहोल नुकसान नहीं करती, वरं शायद मजा देती है।

...lubricant of civilization. In moderate doses alcohol is harmless, and from the lessening of mental tension it induces, perhaps, even helpful. When alcohol becomes a necessity and life becomes intolerable without it, the condition becomes one of alcoholism which is a disease...any treatment based on drugs is bound to fail. (Alcoholism—severe digestive and nervous disturbances.)

इसमें शायद (perhaps) शब्दकी शक्ति शर्त भी दे दी है और जब आदतसे इसके बिना न रहा जाय, पाचन और स्नायु विकृत हो जाय तो उसका इलाज दवासे तो होनेका ही नहीं। लीजिये, डूब जाइये इसीमें। पाचन-प्रणालीकी श्लैष्मिक झिल्लीपर (mucous membrane) अल्कोहोलका क्या प्रभाव होता है, यह अनुभव करनेकी चीज है।

अंग्रेजीमें एक कहावत है कि चालीसकी उम्र होतेतक मनुष्य अपना वैद्य बन जाता है, अथवा बेवकूफ ही बना रहता है। परंतु लुई पॉलिङ्ग चालीससे छोटे हों या बड़े, इस कहावतकी सीमा कूद गये हैं, क्योंकि कुछ बुद्धि और निर्बुद्धि-की मिश्रित बात होशमें बेहोश होकर करते हैं। सूर्यकी धूप तापनेवाले हरएक संसारी व्यक्तिमें बुद्धि और मूर्खताका वैज्ञानिक अनुपातमें मिश्रण रहता ही है। मनुष्य तमाखू-जैसे व्यसनसे बीमार-बूढ़ा होता और उम्र घटनेसे मर जाता है, यहाँतक तो होशकी बातें हैं, परंतु बीमारीकी रोकथाम और इलाजमें जहरके प्रयोग चीर-फाड़ और भोजन-पानीमें रासायनिक पदार्थोंके मिश्रणका जिक्र बिल्कुल न करके वे अल्कोहोल पीनेकी सिफारिश करते हैं। जबकि उनके बहुतसे भूतपूर्व काका-बाबा, उदाहरणके लिये डॉ० डब्ल्यू, एच, ब्राइट एम. आर. सी.एस, एल. आर. सी. पी ने लिखा है—

‘रोगोंपर हम अपने स्वार्थसे अधिकारपूर्वक व्यवसाय करते हैं, रोग डॉक्टर लोग ही पैदा करते हैं। रोगके सिद्धान्त और चिकित्साविषयक हमारे सब साधन गलत हैं।’ यह नोबेल पुरस्कार-विजेता क्या अल्कोहोलकी अतिक्रियाको शरीरपर आघात नहीं मानता, अथवा तमाखूसे कम मानता है? वह इन जहरीली दवाओं, मिश्रणों तथा मादक व्यसनोको बिल्कुल त्याग देनेकी बात क्यों नहीं करता? ऐसे व्यसनी बेहोश वैज्ञानिककी बातें मानकर दुनियाँवालोंकी क्या दशा होगी ?

भोजनसे बुढ़ापा

दीर्घायुके विषयमें कार्नेल यूनिवर्सिटी अमेरिकामें कई वर्षों पहले प्रयोगसे सिद्ध होनेपर प्रसिद्ध किया जा चुका है कि उपवास तथा अल्पाहारसे आयुवर्धनकी गति मन्द हो जाती है जिससे स्वास्थ्य स्थायी होते हुए दीर्घायु प्राप्त होती है। अर्थात् अधिक खानेसे मनुष्य जल्दी बूढ़ा होता और मरता है। ११ अक्टूबर १९५५के न्यूयार्क टाइम्समें, एकाडेमी ऑफ मेडिसिन, अमेरिकाके वैज्ञानिकोंका वक्तव्य लupa था

कि कम या अधिक भोजनपर दीर्घायु अथवा अकाल-मरण होता है। साथ-ही-साथ गरिष्ठ, चर्बी-शक्कर आदि मिश्रित सुखादु बनावटी भोजनसे भी रक्तवाहिनी स्नायुओंमें कठोरता आ जानेसे बुढ़ापा शीघ्र आता है और अकाल-मृत्यु हो जाती है। शरीरको बनावटी, उत्तेजक या मादक अस्वाभाविक, अनावश्यक भोजन और पेय देना ही तो शरीरपर अत्याचार और आघात है, जिससे वह क्षीण होता है। इन्हीं वस्तुओं तथा दवाओंके कारण ग्रेट ब्रिटेनमें साठसे अधिक उम्रवाले नब्बे प्रतिशत लोग संधिवातसे दुखी रहते हैं, तीस लाख व्यक्ति घातपीड़ाके शिकार रहते हैं, बीस लाख लोगोंको सरदर्द रहता है और कई लाख लोगोंका दमासे दम उखड़ता रहता है, परंतु गलत भोजन और दवाओंको बुरा बताकर बंद करने, बहिष्कार करनेकी बात कोई नहीं करता, उल्टे लोग दवाका और रासायनिक विषमिश्रित खेती-बागवानीका व्यवसाय घड़ाघड़ बढ़ा रहे हैं। कैसी अन्धेरकी सभ्यता और अन्धविज्ञान !

बुढ़ापा रोग है

यह संसार मृत्युलोक है, जन्मे हुए सभीको मरना पड़ता है, अधिक कालतक जीनेका मजा लूटनेकी बात तो दूर, कितने ही तो पैदा होते ही मर जाते हैं। मृत्युलोककी इस अन्धेर व्यवस्थासे वैज्ञानिक लोग अब दूसरे लोकमें उड़कर वहाँकी जमीन-मकानकी फिक्र कर रहे हैं, शायद वहाँ दीर्घायु और स्वास्थ्य प्राप्त हो सके। ब्रिटेनके शाही खगोल-विज्ञानीने मन्तव्य प्रकट किया है कि अन्य लोकोंमें उड़ जाने-बसनेकी कल्पना अपने सिरपर सोंग उगाने-जैसी बात है। डॉ० कोरेञ्चेस्कीने कहा कि बूढ़ा होना मनुष्यके हकमें नहीं है, अर्थात् स्वस्थ अमर रहना ही स्वाभाविक हक है, बुढ़ापा (ageng) एक रोग है, मौतको दूर रखनेका अर्थ ही अमरता है। मनुष्य कम-से-कम दो सौ वर्ष तो जी सके ! मनुष्य अनेक तत्वोंसे मिश्रित प्रोटीनका बना हुआ है, ये तत्व हमेशा परस्परकी प्रतिक्रियासे घटते-बढ़ते विकसित परिवर्तित होते रहते हैं, कमजोर और मुर्दा बने तत्व शरीरके सूक्ष्म कोषोंमें रुककर जीवनधाराके संचारमें बाधा उत्पन्न करते हैं जिससे ही रोग, बुढ़ापा और मृत्यु होती है, इसको निरस्त करनेके लिये कोई कीमिया ढूँढ़कर, सम्भवतः किसी इंजिनियरद्वारा नवीन उत्साह मिल सकता है।

वैज्ञानिक जो बात इस सम्बन्धमें भूल गये हैं और जो

बात उन्हें याद रखनी चाहिये वह यह है कि संसारमें हरेक वस्तु, वनस्पति और प्राणीकी कुछ-न-कुछ आयु, अवधि रहती है। लोहेकी मशीन, और पत्थरकी भी। चाहे वह स्थिर हो या चलयमान ! वायुके प्रभावसे पत्थर भी घिसकर दुबले होते हैं, मिट्टी पानीमें दबी पड़ी मुट्ठोंकी हड्डियोंके गलनेसे मालूम होता है कि वे कितनी पुरानी किस जमानेकी हैं। साधारणतया अध्ययनसे तथ्य निकल कि शरीरका पूर्ण विकास जितने समयमें हो जाय, उसके सातगुने समयतक प्राणी जीता है परंतु बहुत कुछ ज्ञान-विज्ञान सीखकर मानव अबतक उतने उचित स्वाभाविक समयतक जी सकने योग्य न बन सका। अभीतक सफाईसे रहना न सीख सका और अपनी खुराकको न जान-पहचान, उसका उचित उपयोग करना भी न सीख सका। स्वास्थ्य और दीर्घायुका कीमिया ढूँढ़ना अपने माथेपर सींग उगानेकी व्यर्थ कल्पना और साधना है। नीरोगताका कोई नुस्खा अबतक न मिला। ये बड़े-बड़े वितण्डावादी पुरस्कृत अज्ञ स्वयं रोगी, बूढ़े होकर मरते हैं, नियमोंको नहीं निभा सकते, दवाइयोंके बलपर दुःख-दर्दपर थोड़ी देरके लिये हल्की पूँक मार देते हैं। इन तथ्योंके आधारपर अपनी विवशता देखकर वैज्ञानिक अपना माथा पीट रहे हैं, किसी रोगकी कोई दवा नहीं है, जीवन भाररूप हो रहा है, अब चिन्ता हो रही है कि आगे क्या होगा ! बच्चे भी अपने बूढ़ोंकी इस लाचारीको देखकर अधिक जीनेकी इच्छा नहीं रखते, बुढ़ापेका दुःख दूसरोंमें देखकर स्वयं डरने लगे हैं। Many conscientious doctors are gravely worried concerning the ultimate effects of mass medication (of atmosphere, water, crops—vegetable, fruits and grains, live-stock, animal foods, immunization measures etc. with poisonous chemicals and virus cultures etc), and many younger folk seeing the miserable condition of so many of their elders, say that they

have no desire to experience old age. Our real problem therefore, not of old age but premature ageing due to the onset of degenerative diseases of various kinds. बुढ़ापेके आगेकी दीर्घायुकी कल्पना क्या करें, यहाँ तो पैदा होते ही हृदय-फेफड़े कमजोर रहते हैं, बचपनमें ही बुढ़ापा आने लगा है, जवानीमें ही अस्थि-कंकाल जो बन जाते हैं, जिन्हें जीना मुश्किल हो रहा है, वे दीर्घायु क्या करेंगे ?

दीर्घायु-साधनके लिये स्विजरलैंडमें हुई यूरोपके डॉक्टरोंकी बैठकमें डॉ० कोरेच्चेस्कीने अपनी पहली बात दुहराते हुए नयी खोज बतायी कि अपने भोजनके प्रभावसे ही मनुष्यके तन्तु कमजोर होते हैं और बुढ़ापा आता है जिसका अन्तिम परिणाम मृत्यु होती है। हमारे भोजनके तत्त्वोंसे ही हमारे शरीरमें विकार और विषसंचार होता है। माड़ी तथा शक्करवाले पदार्थ और हर तरहकी चिकनाई तथा पोषक वस्तुएँ स्वादवश एवं तगड़े बननेके लिये अधिक खानेसे वे शरीरके लिये विष बन जाती हैं और शरीरकी रोगनिरोधक क्षमता कम हो जाती है, जिससे मनुष्य गरमी-सर्दी सहन करनेमें असमर्थ हो जाता है। इन बातोंको सुनकर ऑक्सफोर्ड और डबलिनके दो प्रोफेसरोंने इसे डॉ० कोरेच्चेस्कीकी नयी खोज कहा। कितने तरसकी बात है कि विज्ञानके आचार्योंको अबतक इतना भी नहीं मालूम था। इतना बताकर भी वे हमें नहीं बताते कि क्या खावें और क्या न खावें, और वे विषाक्त रासायनिक मिश्रण करके भूमि जलवायु वनस्पति फल अन्न दूध सबको दूषित कर विषसंचारका व्यवसाय कर रहे हैं, इसीको वे 'विज्ञान' कहते हैं, तथा मानव-रक्तमें भी रोगनिरोधके लिये जहरीले पशु-रक्त-मवादके बने इंजेक्शन ठूसते और दवाइयाँ खिलते हैं। इनकी किन बातोंका कितना भरोसा और व्यवहार किया जाय, और सब कुछ अन्धविश्वासपूर्वक करके मानवकी क्या दशा होगी !

(क्रमशः)

तन-मन-वचनका सदुपयोग

मनसे नित चिंतन करो प्रभु-लीला रसधाम ।
जिह्वासे जप करो नित परम मधुर हरि-नाम ॥
तनसे जो कुछ भी करो कर्म वैध दिन-रात ।
प्रभु-पूजनके भावसे पल-पल पुलकित गात ॥

जब भगवान्की परीक्षा ली गयी

[कहानी]

(लेखक—श्री 'उषाराज')

'माधव-भवन' के रहनेवाले साधारण श्रेणीके मनुष्य नहीं हैं। सभीको उनके ऊँचे खानदानी एवं अमीर होनेका घमंड है, करीब-करीब सभी उस भवनके अंदर रहनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकारके स्वतन्त्र व्यवसायोंको चलाने-वाले हैं, लगभग सभीके पास अपनी-अपनी कारें हैं जो कि रातमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर विश्राम करती हैं और सुबह ड्राइवरोंके साथ उनके मालिकोंकी सेवामें उपस्थित हो जाती हैं।

सभी पुरुषोंका जीवन और उनका गृहस्थ-जीवन साधारण रीतिसे बहता हुआ चला जा रहा है, एक-दूसरेकी आपसमें न ज्यादा पहचान है और न वे यह चाहते हैं कि ज्यादा हेल्-मेल अपने पड़ोसियोंके साथ हो। पुरुष सुबह सज-धजकर चले जाते हैं तो फिर रातके आठ या नौ बजेतक वह भवन मौजका महल बन जाता है, रातकी बातें, बिजनैसकी हवा, उनके राजकुमारोंकी तबियत और नयी फैशनकी बातोंसे सारा भवन गूँज उठता है। हर मंजलेपर रहनेवाली महिलाओंका अपना-अपना अलग मण्डल है, एक दूसरे मण्डलकी स्त्रियाँ आपसमें जब भी कभी मिलेंगी तो बड़ी सँभलकर बातें करेंगी, ऐसा लगता है कि मानो दो प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ आपसमें मिल रहे हों। किसीकी हँसीके लयक जरा-सी बातका पता चला तो उसे सारे भवनमें फैलते देर नहीं लगती। स्त्रियोंका जीवन-क्रम भी ज्यादातर एक दूसरेसे मिलता-जुलता है।

परंतु इन सभीके जीवनसे यदि किसीकी भिन्न गृहस्थ-जीवन-धारा बह रही है तो वह है श्रीमती सिन्हाकी। बेचारी गाँवमें पली हुई एक साधारण लड़की थी, परंतु सौभाग्यसे मिस्टर सिन्हा एक समय उसके गाँवमें अपने मित्रसे मिलने गये थे, वहाँ ये श्रीमती सिन्हा (उस

समयकी कुमारी सीता) के पिताकी नजरोंमें चढ़ गये, उस बेचारेने दौड़-धूप शुरू की और सब कुछ मिल जानेपर अन्तमें मिस्टर सिन्हा सीताके राम बन ही गये। मिस्टर सिन्हाने अपनी स्त्रीका ग्रामीण नाम बदलकर नया नाम रखा 'आशा'।

मिस्टर सिन्हाको सीताके साथ शादी करनेपर तीन चीजें और भी मिलीं। पहली दौलत (सीताके पिताजीने दिल खोलकर दहेज दिया था और इनका यह वर्तमान प्लेट भी उन्होंने दामादकी मर्जीके अनुसार काफी बड़ी रकम खर्च करके ले दिया था), दूसरी चीज थी सीताकी सुन्दरता (सीता काफी सुन्दर थी और आज भी उसका रूप गिरनेके बजाय निखरता ही जा रहा था), तीसरी चीज थी उसका ग्रामीण स्वभाव। उसका यह स्वभाव, उसकी विचार-धाराएँ बजाय पुरुषार्थमें विश्वास करनेके भगवान्की शक्तिमें ही विश्वास करना ज्यादा पसंद करती थीं और इसीके कारण कभी-कभी बीसवीं सदीके मानवमें और पुरानी सदीकी विचारधारामें गहरी टक्कर हो जाया करती थी। बस, एक इसी बातके कारण उनका गृहस्थ-जीवन अशान्त था, नहीं तो, और सभी बातोंमें दोनोंके विचार एक दूसरेसे मिलते थे। अभी कलकी ही बात है कि दोनोंमें रातको काफी देरतक बकझक होती रही। पासके लोगोंने तो आशाके रोनेकी आवाजतक सुनी थी। बात यह हुई कि मिस्टर सिन्हा शामको घर आते समय मोटर-दुर्घटनासे बाल-बाल बच गये थे, घर आते समय जल्दीके कारण कुछ रास्तेके सुनसान होनेपर उन्होंने गाड़ीकी रफ्तार तेज कर दी, अचानक एक मोड़पर सामनेसे गाड़ी आ गयी। यह तो अपनी तत्परताके कारण वे गाड़ीको मोड़कर बचा सके, अन्यथा.....। जब

घर आकर उन्होंने इस घटनाको बतलाया और कहा कि किस प्रकार उन्होंने अपने-आपको उस भयंकर दुर्घटनासे बचा लिया, तब उनको आशा थी कि उनकी पत्नी उनके गाड़ी चलानेके कौशलकी प्रशंसा करेगी और तब वे गर्वसे कहेंगे कि 'अरे यह तो मेरे लिये एक साधारण-सी बात है।' परंतु उनकी आशाके विरुद्ध जब आशाने यह कहा कि 'शामको मेरी दायीं आँख फड़क रही थी, मुझे लगा कि अवश्य ही कोई अनिष्ट होनेवाला है, मैं तो आपका ख्याल कर-करके घबरा रही थी, भगवान्की बड़ी कृपा है कि मैं आपको सकुशल देख रही हूँ, अगर आपको कल समय हो तो मेरा विचार कथा करवानेका है।' इतना सुनते ही उनका पारा चढ़ गया और वे चिल्ला उठे—

‘बस-बस, बंद कर अपनी भक्ति-पूजाकी बातोंको……’

‘आप तो भगवान्का नाम सुनते ही इतना……।’

‘चुप नहीं होगी……’ फिर एक गहरी साँस छोड़ते हुए पूछा ‘अच्छा, अगर तेरा भगवान् मुझे बचाना ही चाहता था तो फिर उसने मुझे दुर्घटनामें क्यों फँसाया ?’ वे आशाकी तरफ उसी प्रकारसे मुँह बनाये हुए देख रहे थे जिस प्रकार अदालतमें वकील बनाता है।

‘दुर्घटनाका होना अपने कर्मोंके आधारपर होता है और इसका घटित होना ही इस बातका सबूत है कि कोई शक्ति काम कर रही है जो कि आपको संकटमें डालती भी है और बचाती भी है, यही शक्ति भगवान्……’

‘बहुत हो चुका, बहुत हो चुका, जा खाना परस, जा……।’ बेचारी हार मानकर खाना खानेकी तैयारी करने लगी।

ऊपरकी बातोंका जब लोगोंको पता चलता तो उनको महिला-मण्डलकी बंद दरवाजेकी सभाओंमें खूब दुहराया जाता। गरमागरम चर्चाएँ होतीं, कोई मिसेज सिन्हाको महामूर्खकी पदवी देती, तो किसी सभ्य महिलाको मिस्टर

सिन्हाके जीवनपर तरस आ जाता और दूसरीसे कहती कि ‘उस बेचारेका जीवन बर्बाद हो गया।’ तब कोई इस बातको स्वीकार करती हुई सिर हिलाकर कहती कि ‘भला गाँवकी जंगली लड़की भी कभी शहरी जीवनको अपना सकती है ? मैं कहती हूँ कि कभी नहीं। और बाकी सभी सदस्याएँ उसकी हाँ-में-हाँ मिला देतीं।

× × ×

‘सुनो आशा, हमें आज किसीके यहाँ खाना खाने जाना है’ मिस्टर सिन्हाने अंदर आकर सोफेपर बैठते हुए कहा।

‘आप ही चले जाना, मुझे तो आज श्रीकृष्ण-भगवान्के जन्म-दिनके उपलक्ष्यमें उपवास है।’ उसने सरलता और स्नेहभरे शब्दोंमें कहा।

‘भई, उपवास वगैराको मारो गोली और तैयार हो जाओ, हमें वहाँ जाना ही चाहिये।’ उन्होंने कुछ रूखी आवाजमें उसे समझाते हुए कहा।

‘परंतु मैं तो इस दिनको बचपनसे ही पाल्ती आ रही हूँ। नहीं, नहीं, मुझसे इसे भंग नहीं किया जायगा, रातको भगवान्……।’

‘रहने दे तेरे भगवान् अगवान्को।’ उन्होंने गरम होकर बात काटते हुए कहा। कुछ देर बाद फिर बोले ‘जिनके यहाँ अपनेको जाना है मैं उनके मालका प्रधान वितरक हूँ और अगर हम उनकी इस पार्टीमें नहीं गये तो उनपर इसका बुरा असर पड़ेगा।’ उन्होंने उसे शान्तिसे फिर समझाया।

‘तब तो आप अकेले ही चले जाइयेगा, मुझे पूछे तो कह देना कि तब्रित खराब होनेके कारण न आ सकी।’ उसने भी उनको समझाते हुए कहा।

‘रहने दे अपनी इस बड़बड़को, मैं कहता हूँ कि तू तैयार हो जा।’ उनका दिमाग गरम हो गया और वे कुछ तेज आवाजमें बोले।

‘अच्छा तो मैं चलती हूँ परंतु खाना नहीं.....!’

‘खाना नहीं खायेगी तो क्या खिलयेगी?’ उन्होंने उसकी बातको काटकर गरजते हुए कहा।

‘देखिये.....!’ उसकी आवाज गलेमें ही रही, कि वे चिछाये—

‘मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता, तू तैयार हो जा और मेरे साथ चल।’

‘आप चाहे जो करें मैं तो उपवासको नहीं तोड़ूंगी।’ उसने दृढ़तासे कहा।

उसके इस उत्तरसे उनके सामने वह दृश्य आ गया—जब सेठजीकी आँखें उसे साथ न देखकर अपमान समझती हुई तन जायँगी और रूखे खरोंमें वे कुछ पूछेंगे, तो मैं क्या जवाब दूँगा। उन्होंने कितने आग्रह-भरे शब्दोंमें मुझे खुद निमन्त्रण दिया था, हो सकता है कि इसका मेरे व्यापारपर भी कुछ खराब असर पड़े और यह ख्याल आते ही वे धबका गये। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि वे इसे किस प्रकार समझायें, ओफ! व्यापारकी रीतिको यह मूर्ख औरत समझती ही नहीं है। क्या करूँ? क्या करूँ? इसे कैसे समझाऊँ? उन्हें कोई रास्ता समझमें नहीं आया, उनका दिमाग चक्कर खाने लगा, परंतु डूबते तिनकेका सहारा लिया, वे नम्रताभरी आवाजमें बोले।

‘रानी! तुम समझती ही नहीं हो, हमारा दोनोंका ही वहाँ जाना जरूरी है। अगर हम न गये तो उसका प्रभाव हमारे व्यापारपर खराब पड़ेगा और भविष्यमें इसका बुरा परिणाम आयेगा।’

‘अच्छा तो मैं आपके साथ चढ़ूँगी और खुद ही सेठजीको सब कुछ समझा दूँगी, बस।’ उसने मधुर स्वरमें कहा।

उनके सामने वह हँसी और अपमानका दृश्य खिंच गया, जिसमें लोग आँखोंसे इशारा करते हुए हँसेंगे और

इनकी तरफ देखेंगे। इन सब बातोंका ख्याल आते ही उनकी सहन-शक्ति समाप्त हो गयी, वे सारी सभ्यताभरी बातें भूल गये और उनका खून उबल उठा, कुछ ख्याल नहीं रहा कि क्या करने जा रहे हैं, जोरसे उसके गालपर चाँटा मार दिया, चटाककी आवाज हुई, वह दर्दके कारण चीख पड़ी, परंतु उन्होंने उसकी आवाजकी परवा न करते हुए शासककी आवाजमें कहा—

‘चलना ही पड़ेगा और साथमें खाना भी पड़ेगा, समझी।’

‘नहीं, नहीं, मैं खाना तो हर्गिज नहीं खाऊँगी, आप चाहे जो करें।’ उसने रोते-रोते कहा, उसकी आवाजमें दृढ़निश्चयताकी झलक थी।

‘नहीं खायेगी?’ वे उसे मारनेके लिये आगे बढ़े, तभी पड़ोसियोंका ख्याल आड़े आ गया और वे रुक गये, फिर बोले ‘अच्छा तो मत खाना और सुन, इस घरका अनाज भी तेरे लिये नहीं है, जिस भगवान्के लिये तू इतनी जिद कर रही है, उसीसे खाना माँगकर खाना, जबतक वह नहीं देता तबतक आरामसे उपवास करती रह, समझी? और हाँ, उससे कहना कि साधारण दाल-साग नहीं दे, वह तो संसारका मालिक है, जरा उससे कहना कि मिठाई भेजे मिठाई, समझी! आखिर मैं भी तो देखूँ कि तेरा भगवान् कहाँसे तेरे लिये मिठाइयाँ भेजता है।’ उनकी जोशभरी आवाज सारे भवनको गुँजा रही थी, वे मानो किसीके विरुद्ध जेहाद बोल रहे हों, इस तरह जोशमें आकर चिछा और काँप रहे थे।

‘आप भी कैसी बात कर रहे हैं, भला मेरे-जैसी साधारण स्त्रीके लिये भगवान्को क्यों कष्ट दिया जाय?’ उसके गालपर उँगलियोंके निशान उभर आये थे फिर भी उसने सहनशीलताका दामन नहीं छोड़ा था।

‘क्यों उसे कष्ट कैसा? तुझे तो उसपर विश्वास है, तू उसके लिये अपने पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर सकती

है तो फिर तेरी सहायता करनेमें उसको कष्ट क्यों महसूस करना चाहिये ।' अपनी ही जीत होगी इस आशामें उन्होंने गरजते हुए कहा । उनके बोलनेके खरसे उसके स्वाभिमानको ठेस लगी, अंदरका अन्तरात्मा तड़फ उठा और वह समझ गयी कि 'यदि अब उसने जरा-सी भी कमजोरी भावुकतावश दिखलायी तो सदा-सदाके लिये उसे भगवान्से नाता तोड़ देना पड़ेगा, अतः उसने दृढ़ताभरे शब्दोंमें कहा—

‘जैसी आपकी मर्जी ।’ उसकी यह बात सुनते ही उनको लगा कि मानो कोई कड़वी चीज उनके गलेमें जाकर अटक गयी है और उसके कारण उनका खर मन्दा पड़ रहा है, उनको लगा कि आशाने यह बात कहकर उनको चुनौती दी है और यह ख्याल आते ही उनको जोश आ गया, वे तेजीके साथ टेबलके पास पहुँचे और फोनको उठाकर डायल घुमाने लगे, नम्बर मिलते ही उन्होंने दुःखभरी आवाजमें कहना शुरू किया—

‘कौन सेठ साहब.....हाँ जी मैं सिन्हा ही बोल रहा हूँ.....जी,....बड़े दुःखके साथ कहना पड़ रहा है कि शायद मैं न आ सकूँगा.....मेरी पत्नीकी तबियत बहुत ज्यादा खराब हो गयी है.....जी.....हाँ ओह धन्यवाद.....’ और उन्होंने फोनको रख दिया, फिर उसकी तरफ देखते हुए बोले—

‘देखें अब तेरा भगवान् किस तरहसे मदद करता है ।’

आज दूसरा दिन है, सिन्हा साहब कमरेके सामनेकी गैलरीमें टहल रहे हैं, अंदर वह सोफेपर बैठी एकटक भगवान्की मूर्तिकी तरफ देख रही है, उसका गुलब्री मुखड़ा तीन दिनसे निराहारके कारण फीका पड़ गया है, वह भी खभावकी पक्की औरत निकली । उसने भोजन तो भोजन, पानी भी नहीं छुआ है अबतक ।

उनका मन तो करता था कि उसे मना लें परंतु उसकी जिदको देखकर वे रुक जाते थे और सोचते थे यदि मनाया तो यह सदा ऐसे ही काम बिगाड़ती रहेगी, अतः देखें कबतक यह हार नहीं मानती है । भवनके लोगोंको इतना तो पता चल गया था कि दोनोंमें झगड़ा खूब जमकर हुआ है, परंतु इस बातका उन्हें पता न था कि बीसवीं सदीमें भगवान्की परीक्षा उनके ही भवनके अंदर मानवद्वारा ली जा रही है ।

परीक्षाके चार दिन व्यतीत हो चुके हैं, दोनोंमेंसे किसीने भी हार मानना स्वीकार नहीं किया है, दोनोंको अपने-अपने ऊपर पूरा-पूरा विश्वास है और इसीलिये कोई भी अपने ध्येयसे पीछे हट नहीं रहा था ।

भगवान्के सामने आशा ध्यान लगाये बैठी है, चन्दनकी धूपसे सारा कमरा भर गया है, कमरेमें ज्यादा धुँआं होते देख मिस्टर सिन्हाने उसके सामनेकी खिड़की खोल दी और खुद बाहर गैलरीमें जाकर खड़े हो गये । इन चार दिनोंमें वे एक क्षणके लिये भी बाहर नहीं गये हैं, आफिसका सारा काम सेक्रेटरीको सँभालनेके लिये कह दिया है । और तो और, घरके नौकरको भी कुछ दिनोंके लिये न आनेको कह दिया, ताकि परीक्षामें किसीके कारण विघ्न न पड़े । इस समय उनके दिलमें कई तरहके विचार आ-जा रहे हैं, कभी सोचते, चलो उसे मना लें आखिर इसमें हार कैसी ? फिर विचार करते, नहीं, नहीं, मुझे बिल्कुल ही नहीं झुकना चाहिये, अगर आज मैं नरम पड़ गया तो शायद जिन्दगीभर यह मेरे विचारोंकी परवा नहीं करेगी और हर समय मुझे उसकी ही इच्छाके अनुसार चलना पड़ेगा, और यह मैं सहन नहीं कर सकूँगा, उसको अपनी जिद छोड़ देनी चाहिये, आखिर वह क्यों नहीं मुझसे माफी माँगती है ? जरूर ही उसमें अकड़ है और यदि ऐसा है तो मैं भी उसकी इस अकड़को तोड़कर ही दम लूँगा ।

इधर वह भी सोचती है—‘क्या करूँ भगवन् ! अगर मैं हार मानती हूँ तो वे सदाके लिये मेरी भावनाओंकी कदर करना छोड़ देंगे और मेरा जीवन एक कठपुतलीके समान हो जायगा, मैं तेरे नामके सहारे बिना जीवित ही कैसे रह सकूँगी। अब तो चाहे जो हो, मैं पीछे नहीं हटूँगी। न मालूम वह शक्तिमान् क्या सोच रहा है ? ओफ, अब तो सहा नहीं जाता, मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ, कोई तपस्विनी नहीं हूँ, मुझसे कठोर तपस्याकी आशा न रखना, नहीं तो, मुझपर अन्याय हो जायगा; क्योंकि शायद मैं अब और ज्यादा सहन न कर सकूँ ? मुझे उबार ले, महाप्रभु ! अब मेरी और तेरी दोनोंकी लाज तेरे ही हाथमें है, कोई ऐसा रास्ता निकाल, जिसमें मुझपर या मेरे स्वामीपर कोई आपत्ति आये बिना ही इस समस्याका समाधान हो जाय ।’

रातके ग्यारह बज चुके हैं, वे सोनेकी तैयारी करनेमें थे कि उन्होंने एक बार उसकी तरफ देखा, वे चकित हो उठे। आशाका मुरझाया हुआ चेहरा एकदम हीरेके समान दमक रहा था। इस बार उनकी आत्मा जरा काँप उठी और ऐसा आभास हुआ कि वातावरण कुछ बदलता जा रहा है, परंतु उन्होंने अपनेको सँभाला और सोफेपर लेट गये।

आशाके सामनेकी खिड़की खुली हुई है और अचानक उन्होंने देखा कि ‘सामनेके कमरेमें रोशनी हुई, शायद कोई अब वापस आया होगा, यह सोचकर उन्होंने आँखें फेर लीं।

‘तो तुम आज फिर पीकर आये हो ?’ उनके कानोंमें ये शब्द मानो जबरदस्ती आ पड़े हों और साथ ही उनको मजबूर कर रहे हों कि सामने देखो क्या हो रहा है।

‘हाँ……आ……ओ……हाँ……मैंने शराब पी……है……’ उन्होंने देखा सामनेके कमरेमें एक आदमी शराबके

नशेमें झूमता हुआ अपनी औरतसे बातें कर रहा है, उसके हाथमें एक बंडल है, शायद उसमें कुछ खानेकी चीजें होंगी, ऐसा उन्होंने सोचा।

‘तुम शराब पीते हो, लोग मुझे कितने ताने मारते हैं। मैं किसीके यहाँ जाने-आनेमें भी शरमाती हूँ और कोई भी शरीफ आदमी या औरत हमारे यहाँ आते-जाते नहीं हैं।’ बेचारी औरतने रोते-रोते कहा।

‘अरी……मरने……ए……दे……सबको……ओ……मैं हूँ तब……अ……तक दूसरे की चिन्ता……आ……मत कर……’ वह हकलाता हुआ बोला।

‘हाँ, चिन्ता न करूँ ? मुन्नीका नाम स्कूलसे काट दिया गया। आपने तीन महीनेसे फीस ही नहीं भरी, घरकी हालत तो यह……’

अरी जाने……ए……दे……इन सब बातोंको……आ……आ देख मैं तेरे लिये क्या लाया……हूँ……कहते हुए उसने हाथ हिलाकर उसको दिखलाया।

‘रहने दो, मुझको कुछ नहीं चाहिये।’ औरतने गुस्सा खाते हुए कहा।

‘अरी……आ पानी आ जायगा……ओ मुँहमें……आ आ……’ और उसने फिर वह हाथ हिलाकर दिखलाया।

‘हाँ, हाँ बच्चे भूखे मरे और तुम रातको मेरे लिये मिठाई लाओ, इसके बदले जहर लाकर दे दो तो ठीक रहेगा समझे ? मुझे यह नहीं चाहिये, पर हाँ, लाओ’ उसने गुस्सेमें आकर उससे वह बंडल झटका देकर ले लिया और जोरसे बाहर फेंका।

मिस्टर सिन्हा जो एक पुतलेके समान यह हाल देख रहे थे, औरतको बंडल बाहर फेंकते देखकर उनकी आत्मा काँप उठी, उन्हें लगा कि अँधियारेमें दो हाथ उस बंडलको उठाये तेजीके साथ इधर आ रहे हैं, और

उनकी आँखोंके सामने अँधेरा-सा छाने लगा, सारा वातावरण बदल गया और कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है, वह बंडल तेजीके साथ आ रहा है, उसकी दूरी धीरे-धीरे कम होती चली जा रही थी और वे समझ गये कि वइ कहाँ और किसके पास आ पत्नीकी गोदमें आकर पड़ा है !



रूपकी साध

सौन्दर्यकी साधना भी तो मेरे जीवनकी एक साध है, प्रियतम ! तुमसे प्रेम, तुम्हारी भक्ति ही मेरी सौन्दर्य-साधना है ।

जब कभी मैं तुम्हारी ओर मुग्ध भावनाभरी आँखोंसे देखता हूँ और तुम उनमें थोड़ी-सी अपनी रूपमदिरा उड़ेल देते हो, मेरी आँखें इस दुनियाकी ओर घूम पड़ती हैं और मैं देखता हूँ कि यहाँकी कोई मधु-प्यासी आँखें मुझे ललचायी हुई-सी देख रही हैं ।

अपनी आँखोंकी उस मादकताका प्रतिबिम्ब उन देखनेवाली आँखोंमें देखकर ही होगा, मैं उनपर ही मुग्ध हो जाता हूँ ।

और जब कभी तुम्हारी ओरसे रस-पान करके आँख फेरनेपर मुझे कोई वैसी प्रतीक्षा करती हुई आँखें देखनेको नहीं मिलती तो मैं स्वयं इधर-उधर उनकी खोज करने लगता हूँ ।

यह कैसा उपहास है प्रियतम ! यह कैसी विडम्बना है ? मैं तुम्हारी वह हल्की-सी रूप-मदिरा अबतक पी ही कितनी बार पाया हूँ—पी ही कितनी पाता हूँ ।

तुम्हारी रूप-मदिरा इतनी हल्की-सी रूप-मदिरा !

उससे उतनी देरमें मेरा सौन्दर्य बहुत थोड़ा ही तो बढ़ पाता है !

और तुम इतनी जल्द मेरी आँखोंसे ओझल होकर उन्हें इधर दुनियाकी ओर फेर देते हो ।

मेरी वह सौन्दर्य-साधना अछूती, अनदेखी क्यों नहीं रह पाती रूपेश !

आह ! क्या मैं इन मोहनियोंको रिझानेके लिये ही तुम्हारे रूप-मधुका संचय करने जाता हूँ ।

यह कैसा अन्धेर है, मेरे सर्वस्व !

मेरा हृदय इस वसुधाकी इन रूप-परियोंके अञ्चलमें ऐसे क्यों उलझ-उलझ जाता है ?

तुम अपने रूप-मधुसे मेरा सत्कार करनेके पश्चात् क्यों थोड़ी देर और नहीं ठहर जाया करते मेरे सामने, मेरे मधुर !—जिससे उतनी देरमें मैं तुम्हारे रूप-मदको पचाकर उसे अपने हृदयका अङ्ग बना लिया करूँ ।

मेरी सौन्दर्यसाधना तो तभी सुरक्षित रहकर सफल हो सकती है ।

मेरी सौन्दर्य-साधना तो तुम्हारे और मेरे लिये ही है, मेरे रूपमय !

[—एक तरुण साधककी डायरीसे १०।८।३९]

संगीत—एक पवित्र परामर्श

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

इसमें संदेह नहीं कि अपने कन्दमूलफलाशी वनवासी तपस्वी ऋषि-मुनियोंके परामर्श, उपदेश-निर्देश सब बड़े पवित्र होते थे। संगीतशास्त्रके विद्वानोंने संगीतकी प्रशंसा भी की है और उसके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करनेका उपदेश भी दिया है। भगवत्प्रीत्यर्थ किये गये तो सभी कार्य निर्गुण एवं प्रशंसनीय हैं। फिर दिव्य संगीतसे भगवान्को प्रसन्न करना प्रशंसाके योग्य क्यों न होता? तथापि संगीतमें राग एवं रजोगुणका अंश अवश्य है, यह पवित्रात्माओंसे छिपा नहीं है। विशुद्ध सात्विक दृष्टिसे संगीत रजोगुणका ही कार्य प्रतीत होता है और इसके पतनोन्मुख परिणाम भी स्पष्ट हैं। इसीलिये संगीतके सर्वप्रधान तथा समस्त उपकरणोंके निर्देशक 'भरतनाट्यशास्त्र'के ही अन्तमें उसकी बड़ी भर्त्सना है और अन्तमें ही किसी शास्त्रका अभिप्राय व्यक्त होता है, यह मीमांसकोंकी मान्यता है। नाट्य-शास्त्रके अन्तमें लिखा है कि ऋषियोंने संगीतको बड़ा भीषण शाप दिया और इसे एकमात्र शूद्रोंका कार्य बतलाया—

निर्ब्रह्मणो निराभूतः शूद्राचारो भविष्यति।

(३६।३४)

वेदोंमें भी इसका निषेध है। गोपथ ब्राह्मण (२।२१) का आदेश है कि ब्राह्मण कभी नाच-गान न करे—

‘ब्राह्मणो नैव गायेत्र नृत्येत्।’

(गोपथ० २।२१)

मनुने नाच, गान, वाद्यका नाम ‘तौर्यत्रिक’ रखवा है और इसे क्षत्रियके लिये भी त्याज्य एवं पातक व्यसन बतलाया है—

‘तौर्यत्रिकं वृथाटया च कामजो दशको गणः।’

(मनुस्मृति ७।४७)

इसे वे दुरन्त व्यसन कहकर राजाके लिये अभिशाप बतलाते हैं और सदा इससे दूर रहनेकी सलाह देते हैं—

१. संगीतका अर्थ केवल गीत ही नहीं, इसमें वादन-नर्तन सब सम्मिलित हैं। ‘संगीत-दर्पण’में स्पष्ट लिखा है—

‘गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते।’

अर्थात् नाचना और बाजा बजाना भी संगीत ही है।

व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।

(मनु० ७।४५)

कौटिल्य लिखते हैं कि ‘व्यसन’ शब्दका अर्थ ही है कि जो कल्याण-मार्गसे पुरुषको भ्रष्ट कर देता हो।

‘व्यस्यस्येनं श्रेयसः—इति व्यसनम्’

(कौटिल्य अर्थ० ८।१।४)

कौटिल्यके मतसे भी ‘संगीत’ कामज व्यसन है—

‘गायकवादकैश्चानर्थैः संयोगः कामः।’

(८।३।१७)

बाह्यस्पत्य अर्थशास्त्र भी यही कहता है—

‘नटनर्तकीविटवेश्याकुनृपेष्वनृताडम्बरं वक्तव्यः।’

(१।५४)

कादम्बरीमें बाणभट्टने चन्द्रापीडके राज्यका वर्णन करते हुए लिखा है कि उसके राज्यमें संगीत-श्रवणका व्यसन केवल मृगोंमें ही था—यह दुर्व्यसन मनुष्योंमें बिल्कुल न था—‘एणकानां गीतव्यसनम्।’ श्रीवाल्मीकिने रावणकी स्त्रियोंको संगीतरत वीणा आदि लिये सोती हुई दिखलाया है—

नृत्यवादित्रकुशला राक्षसेन्द्रभुजाङ्गगाः।

(सुन्दरकाण्ड १०।३२)

काचिद् वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता सम्प्रकाशते।(१०।३७)

अन्या कक्षगतेनैव मङ्गुकेनासितेक्षणा।(१०।३८)

विपंचीं परिगृह्णान्या नियता नृत्यशालिनी।

इसी तरह कोई मृदङ्ग, कोई डिंडिम, कोई आडंबर वाद्य लिये सो रही थी।(श्लो० ४१ से ४५) पर रामादि चारों भाई, दशरथ, वशिष्ठ-विश्वामित्र, दशरथकी रानियाँ तथा जनककी रानियों एवं सीता आदिमें कोई भी संगीत नहीं जानता। इतना ही नहीं, राम सीधे अयोध्या-काण्डके १०० वें अध्यायमें भरतको समझाते हुए संगीतसे दूर रहनेका उपदेश देते हैं—(देखिये अयोध्याकाण्ड १००।६८ की शिरोमणि, तिलक, भूषण, तीर्थ या गीताप्रेसकी हिंदी

२. कामन्दकका भी यही मत है—

यस्माद्धि व्यसति श्रेयस्तस्माद् व्यसनमुच्यते।

(कामन्दकीयनीतिसार १३।१९)

व्याख्या)। वशिष्ठ-विश्वामित्रके शिक्षणमें भी संगीताध्ययनका कोई उल्लेख नहीं है। इससे काव्योपदेशपद्धति—(कान्ता-संमितोपदेशसृति) से महाकवि वाल्मीकिके मतसे भी संगीत सर्वथा असमीचीन एवं कामज व्यसन है। प्रायः सभी धर्म-शास्त्रकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासीके साथ गृहस्थको भी संगीतसे बहुत दूर रहनेको कहते हैं—

कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ।

(मनु० २।१७८)^३

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।

(मनु० ४।६४)

यह वचन गृहस्थके लिये ही है। आपस्तम्ब (१।३१) तथा विष्णुधर्मसूत्र० (६२) का भी यही मत है। गौतमधर्मसूत्र (१५।१८ तथा २१।३१) के अनुसार संगीतज्ञ अपाङ्क्त्य होता है।

‘न भोजयेत्.....वादित्रतालनृत्यगीतशीलान्’

(गौ० १५।१८)

मनु भी (३।१५५, १६७ में) संगीतकारीको अनाचारी, अपाङ्क्त्य, अधम एवं विगर्हित बतलाते हैं—

कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च.....।

एतान् विगर्हिताचारानापाङ्क्त्यान् द्विजाधमान् ।

द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ।

संगीताचार्य—संगीतजीवीके अन्नकी भी बड़ी निन्दा की गयी है—

स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च ।

(४।२१०)

वे ही कहते हैं कि ‘कुशीलवो’—संगीतज्ञोंके साथ शूद्रवत् व्यवहार किया जाय, चाहे ये ब्राह्मण ही क्यों न हों—

.....कुशीलवान् ।

प्रेष्यान् वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥

(मनु० ८।१०२)

मनु (८।६५) के अनुसार इन्हें साक्ष्यका भी अधिकार नहीं है—

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कास्कुशीलवौ ।

टीकाकारोंने कारण बतलाते हुए लिखा है कि ये धन-लोभादिमें पड़कर सब असत् कार्य कर सकते हैं। याज्ञवल्क्य

३. अविष्यपुराण (१।४।१४६) में भी यही श्लोक है।

३।७०, नारद (ऋणादान १।१५८—क्लीवकुशीलवाः), कात्यायन, बृहस्पति, विष्णु आदि अन्य स्मृतिकारोंका भी यही मत है। पद्मपुराण पातालखण्ड (९।५८) में भी संगीतको असदाचारका लक्षण बतलाया है—

‘तौर्यत्रिकप्रियो न स्यात्’

श्रीमद्भागवतमें साधुको संगीत सीखनेकी तो बात ही क्या सुननेकी भी मनाही है—

ग्राम्यगीतं न शृणुयाद् यतिर्वनचरः क्वचित् ।

शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥

(११।८।१७)

नृत्यगीतके कुचक्रमें पड़कर ही शृंगी ऋषि वेश्याओंके वशीभूत हुए । (११।८।१८)

पद्मपुराण भूमिखण्ड (७१ से ७७ अध्यायों) में ययातिकी कथा आती है। वे अत्यन्त धर्मात्मा एवं विष्णुभक्तिपरायण थे। इसी कारण भूमण्डलपर शासन करते हुए उन्हें एक लाख वर्ष बीत गये, पर उनका शरीर नित्य नूतन, तरुण एवं आकर्षक दिखायी देता था। बुढ़ापेका उनके शरीरसे स्पर्श भी नहीं हुआ था। यही नहीं, उनकी सारी प्रजा भी वैसी ही तरुण थी। भगवान्की कृपा तथा ययातिके पुण्यकर्मोंसे यहाँ कोई भी मरता नहीं था। जो रूप स्वर्गका था, वही भूतलका भी हो रहा था—

यद्रूपं स्वर्गलोकस्य तद्रूपं भूतलस्य च ।

(भूमिखण्ड ७५।३०)

रुक्माङ्गदके ही राज्यकी भौति यमपुरी इनके राज्यमें भी सूती पड़ गयी। दूतोंसे विस्तारपूर्वक यहाँकी दशा जानकर यमराजने इन्द्रके पास जाकर सब वृत्तान्त निवेदन किया। इसपर इन्द्रने कामदेव तथा गन्धर्वोंको नटके वेषमें ययातिके पास भेजा। उन्होंने किसी प्रकार राजासे वामनावतारका नाटक खेलनेकी अनुमति प्राप्त कर ली। राजा नाटक देखने लगे। कामदेव ही उस नाटकका सूत्रधार था, वसंत पारिपार्श्वक बना। रति नटी बनी। ययाति उनके गीत, नृत्य और ललित हास्यसे अत्यन्त मोहित हो गये। वे मल-मूत्र त्यागकर आये और पैरोंको बिना ही धोये आसनपर बैठ गये। इसी बीच छिद्र पाकर जरा, काम आदि उनके शरीरमें प्रविष्ट हो गये।—

कामस्य गीतलास्येन हास्येन ललितेन च ।

मोहितो राजराजेन्द्रः कामसंसक्तमानसः ॥

(मू० ७७।१)

बस क्या था, इन्द्रका काम बन गया। यथाति विपयाकृष्ट होकर परमार्थभ्रष्ट हो गये और भूलोक पुनः मर्त्यलोक बन गया। (अध्याय ७८ से ८१)। जब भला साधारण संगीत श्रवण-वामनावतारके पवित्र नाट्यदर्शनका यह परिणाम हो सकता है तो आजके अत्यन्त कुत्सित सिनेमाके चित्रपटोंको क्षणभर भी देखनेका क्या परिणाम होगा, यह भगवान् ही जानें ! सच्चे एवं शुद्ध हृदयसे सोचनेपर सिनेमा सीधा नरकका दरवाजा है। यहाँ इसपर अधिक लिखना व्यर्थ है।

साहित्यमें संगीत

यह तो हुई वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, साधु-संतोंकी पवित्र दृष्टिमें संगीतपर परामर्शकी बात। अब साहित्यिकोंकी बात सुनिये, जो संगीतके निर्माता तथा कभी-कभी उसीकी जोड़ीमें विराजते दीखते हैं। क्षेमेन्द्र काश्मीरके बड़े प्रसिद्ध साहित्यिक विद्वान् हुए हैं। उनकी 'कलाविलास' पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। यह 'काव्यमाला'के प्रथम पुष्पमें प्रकाशित है। इसके सातवें सर्गमें इन्होंने संगीतपर जो कुछ लिखा है, उसका आवश्यक तथा बहुत ही संक्षिप्त अंश यहाँ देना आवश्यक प्रतीत होता है। वे लिखते हैं—

अर्थो नाम जनानां जीवितमखिलक्रियाकलापस्य।

तं संहरन्ति धूर्ता लङ्गलङ्गल गायना लोके ॥ १ ॥

निखिल कर्मकलाप (समूह) का आधार धन ही मनुष्यका जीवन है, पर ये लङ्गलङ्गल (बकरेके समान बकबकाने-वाले—शब्द करनेवाले) गायक उसका सर्वथा संहार कर लेते हैं।

निःशेषं कमलाकरकोषं जग्ध्वापि कुमुदमास्वाद्य।

क्षीणा गायनभृङ्गा मातङ्गप्रणयतां यान्ति ॥ २ ॥

अर्थात् पृथ्वीके सारे आनन्दोंको भोगकर तथा लक्ष्मीका सारा खजाना चट कर भी ये गायकरूपी भौरे क्षीण ही रहते हैं और राजारूपी मातङ्ग (हाथी) के मित्र-प्रेमपात्र ही बने रहते हैं।

४. सिनेमापर विशेष जानकारीके लिये—'सिनेमा—मनोरंजन या विनाशका साधन' (गीताप्रेस) तथा 'सिनेमा और हम' (वेदप्रकाश कार्यालय ४४७८, नयी सड़क दिल्ली) तथा 'सिनेमा विनाशका साधन' (प्रा० विद्यासंस्थान अजमेर) इत्यादि पुस्तकें देखनी चाहिये।

तमसि वराकश्चौरो हाहाकारेण याति संव्रतः।

गायनचौरः प्रकटं हाहाकृत्वैव हरति सर्वस्वम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार गायकोंकी बड़ी ही निन्दा की गयी है।

लक्ष्मीको भी यह शाप है कि वह ऋषि-मुनियों, सच्चे साधुओंके उपयोगमें न आकर गायकोंकी ही भोज्य बनती है—

वर्जितसाधुद्विजवरवृद्धायाः सकलशोककलितायाः।

शापोऽयमेव लक्ष्म्या गायनभोज्यैव यत्सततम् ॥

(८।१४)

तत्पश्चात् क्षेमेन्द्रने एक विचित्र कल्पनापूर्ण कथा लिखी है। कहते हैं एक बार इन्द्रके दरबारमें नारदजी गये। इन्द्रने भूलोकका कुशलवृत्त पूछा। नारदने राजाओंके धर्म, यज्ञ, दानादिकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि धन-वैभवमें पृथ्वीके राजा तो अब आपकी और वरुण-कुबेरकी स्पर्धा करने लग गये हैं। आपने तो सौ यज्ञ किये थे, वे हजारों यज्ञ कर आपके शतमख नामका बहुधा मखौल उड़ाने लगे हैं—

शतमखसंज्ञामसकृद् बहुतरयज्ञा हसन्त्येव।

(१७)

नारदजीके इस वचनको सुनकर इन्द्रका हृदय क्रोधसे भर आया। अतः राजाओंके धनापहरणके लिये उन्होंने पिशाचोंकी टोली पृथ्वीपर भेजी। उनमेंसे निम्न नामवाले गायनपिशाच बड़े भयदायक हैं।

मायादासः प्रथमं डम्बरदासश्च वज्रदासश्च।

क्षयदासलुण्ठदासौ खरहरदासः प्रसिद्धदासश्च वाडवदासश्चाष्टौ।

इन गीत-मन्त्रवाले पिशाचोंने मुँह बाकर अति विकट गायनकी रचना की—

विवृतास्यघोरकुहरा गायनसृष्टिं ससर्जुरतिविकटाम्।

(२१)

वास्तवमें ये ही कर्णपिशाच हैं, जो गीतके व्याजसे राजाओंके हृदयमें घुसकर इन्द्रका काम बनाते हुए राजाओंके धन, धर्म, समय एवं सर्वस्वका अपहरण कर लेते हैं। अतः राजा इन्हें अपने राष्ट्रमें न रहने दें। जो ऐसा करेगा उसकी यज्ञमयी भूमि सर्वसमृद्धिसम्पन्न रहेगी। उनके निम्न अनेकों भेद हैं। इनसे अर्थकी अवश्य रक्षा करे—

नटनर्तकचक्रचराः कुशीलवाश्चरणा विटाश्चैव ।

ऐश्वर्यशालिशलभाश्चरन्ति तेभ्यः श्रियं रक्षेत् ॥

(२५)

जब गायकसंघ एकमें स्वर मिलाकर गाता है, तब उससे उत्थित महान् शब्दराशि मानो यह प्रकट करती है कि यह अस्थानदत्त लक्ष्मीदेवीका घोर आक्रन्दन है—

गायनसंघस्यैकादुत्तिष्ठति गीतनिःस्वनः सुमहान् ।

अस्थाने दत्तायाः लक्ष्म्या इव सम्भ्रमाक्रन्दः ॥

(२९) *

सामवेदका तिरस्कार क्यों ?

‘सिद्धान्त’ (काशीके विचारपत्र) के ५वें वर्षमें सामवेदसम्बन्धी एक शंका की गयी थी । उसका आशय यह था कि गीतामें तो भगवान्ने ‘वेदानां सामवेदोऽस्मि’ से सामवेदकी प्रशंसा की है, किंतु मनु आदि धर्मशास्त्रों तथा मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी उसकी ध्वनिको अपवित्र बतलाया गया है ।† इन परस्परविरोधी वचनोंका सामंजस्य कैसे हो । पं० दुर्गादत्तजी सामवेदीने जो इसका समाधान किया था, उसमें ‘अशुचि’ का अर्थ अधिक शुचि कर दिया था । किंतु यथार्थ स्थिति यह है कि जहाँ भगवत्स्तुति होनेसे साम प्रशंसनीय है, वहीं संगीतमय होनेसे ही उसकी ध्वनि अशुद्ध है—यह ‘अशुचिर्ध्वनिः’ से स्पष्ट है । ‘अशुचि’ का अर्थ अधिक पवित्र कहीं नहीं किया गया । गान होनेसे ही

उसके सामने ऋग्यजुःका अनध्याय बतलाया गया । वस्तुतः यही भाव है । याज्ञवल्क्यादि वैदिक शिक्षा तथा पाणिनीय शिक्षामें भी इसीलिये गायकके लिये कहा गया है—

‘गीती शीघ्री शिरःकम्पी’ षडेते पाठकाधमाः !

(शु० यजुः सभाष्य चौखंभा खं० ४ परि० पृ० १३)

सहसा यहाँ जो वचन ध्यानमें आये, उनका ही यह संक्षिप्त संग्रह है । ऐसे वचन इतने ही नहीं हैं । अनुसंधान किया जाय तो बहुत सामग्री प्राप्त होगी । बहुत-सी बातें तो लिखते-लिखते दिमागमें आकर निकल गयीं । यह भी ठीक है कि संगीतके पक्षमें भी कुछ वचन मिलेंगे । पर आश्चर्य है, सुभाषितवालोंने उनमेंसे कोई एक भी वचन क्यों नहीं दिया ।

इसके अतिरिक्त यह बात भी नहीं भूलनी चाहिये कि संगीतके समर्थक वचन ‘बृहद्देशी’ ‘संगीतरत्नाकर’ आदिमें ही मिलते हैं, जो इस विवादमें मध्यस्थताका कार्य न करनेसे प्रमाणकोटिमें परिगणित नहीं हो सकते ।

जो भी हो, इस समय भारतमें संगीतका अन्धाधुन्ध प्रचार, स्त्री-पुरुषोंकी सहशिक्षा और सिनेमा आदिकी बाढ़ कोई प्रसन्नताकी बात नहीं है । इनपर यदि कोई अड्डा नहीं लगा तो परिणाम बहुत विकृत ही होगा । इसमें जो कोटि-कोटि जनताके समयकी बर्बादी तथा धनका संहार होता है, वह भी देशके कर्णधारोंके लिये विचारणीय है । राजकवि क्षेमेन्द्रके वचन इस सम्बन्धमें गम्भीरतापूर्वक विचारणीय हैं, बस, इतना ही निवेदन कर इस प्रबन्धका यहाँ उपसंहार किया जाता है । ‡

* इनके ही एक दूसरे ग्रन्थ चारुचर्यामें कहा है—

न गीतवाद्याभिरतिर्विलासव्यसनी भवेत् । वीणाविनोदव्यसनी वत्सेशः शत्रुणा हतः । (७६)

वत्सराजकी यह कथा कथासरित्सागरके प्रथम खण्डके १२ वें तरंगमें विस्तारसे है ।

† ‘सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनिः ।’ (मनु० ४ । १२४)

‡ रुद्रः साममयोऽन्ते च तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ (मार्कण्डेयपुराण—१०२ । १०९)

‘सामशब्दे ऋग्यजुषोरवध्यायः । (स्मृतिचन्द्रिका १ । २७)

‡ संगीतसे विषयकामना जाग्रत होती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं, इसीलिये यह राजस है और पतनमें कारण होता है । तथापि नारदादिके पवित्र संगीतका अनुसरण करके भगवद्-गुणानुवाद गाना हानिकारक तो नहीं ही माना जाता वरं परम उपादेय माना जाता है । पर उसमें लक्ष्य विशुद्ध भगवद्-गुणानुवाद ही होना चाहिये, मीठे स्वर या राग नहीं । आजकल तो सारी संस्कृति ही नाच-वाद्यमें आकर समाप्त हो गयी है । लड़कियों तथा बहू-बेटियोंको पब्लिकमें नचाया जाता है । ‘सांस्कृतिक कार्यक्रमका अर्थ ही हो गया है— नृत्य-गान ! इससे पतन अवश्यम्भावी है । सिनेमा तो इस पतनका एक मुख्यतम साधन है, पर आज हम पतनमें ही उत्थान मानकर भ्रष्ट हुए जा रहे हैं !

एक साधकके उद्गार तथा प्रभुसे प्रार्थना

(१)

× × × दिनभर जगत्के प्राणी-पदार्थोंका सङ्ग रहता है अतएव कभी-कभी उन्हींका चिन्तन होने लगता है । इसके लिये क्या करूँ । प्रभुकी अनन्त महिमाको, उनके शील-स्वभावको किसी अंशमें जानकर भी नहीं जानता । जानकर भी उन्हींका निरन्तर चिन्तन नहीं कर पाता । मन तथा शरीर प्रायः भौतिक पदार्थोंमें ही लगे रहते हैं । ऐसी अवस्थामें हे मेरे प्रभु ! मैं कैसे निरन्तर आपका मधुर स्मरण करूँ । अब तो आप ही मेरे गति, मति, प्राण हैं । आप ही अपनी ओर देखकर मेरे मनको निरन्तर सँभालिये । मन आपको दे तो दिया ही है, तब फिर किसी दूसरेको उसकी ओर क्यों ताकने दिया जाय ? उसमें तो अब बस, केवल आपकी ही मुनि-मन-आकर्षिणी लीला चल्ती रहे । यह मन आपका मन होकर, अनवरत आपके ही अनुगत रहे । मेरा उसमें कुछ भी न रहे । मेरा खाना-पीना, सोना-जगना, उठना-बैठना, लेना-देना सब एकमात्र प्रभुके लिये ही हो । प्रभु मेरे हैं, मैं उनका हूँ । शरीर कहीं भी रहे, निरन्तर रात-दिन उन्हींकी समीपताका अनुभव होता रहे ।

(२)

मेरे प्रभु !

मैं आपकी वस्तु हूँ । मुझे कहीं रक्खें, कैसे भी रक्खें, चाहे जैसे बरतें, पास बुला लें या दूर रक्खें, प्यार करें या ठुकरावें, जिसमें आपको सुख हो, वही करें । नाथ ! मेरे मनकी आप कभी न करें । मेरे मनकी करने लगेंगे तो पता नहीं यह दुष्ट मन क्या-क्या चाहेगा । अतः आप सदा अपने मङ्गलमय मनकी ही करते रहें । बस, इतनी कृपा हो कि आपकी मधुमयी स्मृति जीवनमें नित्य भरी रहे । मैं क्षणभरके लिये आपको न भूल सकूँ । सदा आपको अपने साथ देखूँ । न दूर, न अलग । मैं सदा आपमें रहूँ और आप मुझमें रहें । निरन्तर यही अनुभव होता रहे । अन्य किसी भी कामना-वासनाकी कल्पना ही न रहे । सबका मूल ही उखाड़ दिया जाय । प्रभो ! आप अपना परम दिव्य प्रेम-रस इस हृदय-मात्रमें भरते रहिये । इसे पूरा-पूरा भर दीजिये मेरे प्रभु ! क्या ऐसा कभी न होगा ? क्या इसमें कहीं कुछ स्थान खाली भी रह जायगा ? नहीं ऐसा नहीं होगा । यह भरेगा, पूर्णरूपसे भरेगा, छलक उठेगा और बह जायगी चारों ओर आपके मधुर प्रेमरस-सुधाकी धारा । आप इसमें अपना विशुद्ध प्रेम-रस भरते चले जाइये । आप सर्वसमर्थ हैं । मेरी दुर्बलताओंकी ओर न देखिये । आपकी एक दृष्टिसे ही सारी दुर्बलताओंका नाश हो जायगा ।

मेरा हृदय आपके सामने है, सदा खुला है; क्योंकि आप उसमें नित्य निवास करते हैं । मेरी सम्पूर्ण गति-विधिका आपको पूर्णरूपसे पता है । मेरे हृदयमें कितनी प्रेम-पिपासा है और कितनी भोग-लिप्सा है; कितना पवित्र प्रेम है और कितना काम-कलुष है । आपसे कुछ भी छिपा नहीं है । पर मैं क्या करूँ ? मनमें बड़ी-बड़ी ऊँची प्रेमकी अभिलाषाएँ उठती हैं, पर केवल अभिलाषासे क्या होता है । प्रेमकी सच्ची भूल जाग्रत् होनी चाहिये । उसे प्रभो ! आप ही जाग्रत् कीजिये और आप ही उसे पूर्ण भी कीजिये । मैं तो सब प्रकारसे आपके चरण-तलकी शरण हूँ । बस, आपके इन अरुण चरणकमलोंमें सदा पड़ा रहूँ । इन चरणोंमें दृढ़ अनुराग सदा अक्षुण्ण बना रहे । और वह निरन्तर बढ़ता ही रहे । अपनी वस्तुको आप ही सँभालेंगे । मुझे क्या चिन्ता है !

हो चुका बस, आपका ही मैं हमेशाके लिये । आप ही इस वस्तु अपनीको प्रभो ! सँभालिये ॥

उच्चस्तरका जीवन किसमें ?

[गहराईसे विचारिये और कर्तव्य निश्चय कीजिये]

इसमें ? या

इसमें ?

१. सूर्योदयसे पूर्व उठना ।

१. दिन चढ़तेक सोते रहना ।

२. उठते ही भगवान्का स्मरण करना ।

२. उठते ही सिगरेट-चाय पीना, अखबार पढ़ना ।

३. स्नान करके पूजा-पाठ करनेके बाद कुछ खाना-पीना ।

३. नहानेसे पहले ही चाय-नाश्ता करना ।

४. भोजनके समय पवित्र रहना, किसीकी जूँठ न खाना तथा स्पर्शस्पर्शका विचार रखना ।

४. डाक्टरोंको नब्ज देखकर हाथ धोते, ऑपरेशनके समय कपड़े तथा हथियारोंको हाथोंसे भी न छूने देना आदि देखते हुए भी स्पर्शस्पर्शका विचार न रखना तथा हर किसीकी जूँठ न खाना । अपवित्र रहना ।

५. सदा सुपाच्य स्वास्थ्यकर सार्विक निरामिष भोजन करना ।

५. जीभके स्वादके लिये अंटसंट अस्वास्थ्यकर दुष्पाच्य तामसिक (मांस-अंडे आदि) आहार करना ।

६. सादे साफ कम कीमतके सुन्दर पवित्र वस्त्र पहनना । वस्त्रोंका अनावश्यक संग्रह न करना ।

६. तड़कीले-भड़कीले अपवित्र बहुत बड़ी कीमतके, शान-शौकीनीकी वृद्धि करनेवाले वस्त्र पहनना तथा संग्रहमें लगे रहना ।

७. बड़ोंको नमस्कार करना, उनका आदर करना तथा उनके सदुपदेशोंसे लाभ उठाना ।

७. बड़ोंका निरादर करना, उनके मजाक उड़ाना, उन्हें मूर्ख मानना तथा कहना ।

८. अपनी सम्यता-संस्कृतिके प्रति आदर-बुद्धि रखना ।

८. विदेशी सम्यता-संस्कृतिके प्रति आदर-बुद्धि रखना ।

९. सत्य, अहिंसा तथा ईमानदारीका व्यवहार करना ।

९. मिथ्या, हिंसायुक्त तथा बेईमानीका व्यवहार करना ।

१०. पर-स्त्रीको माता-बहिन तथा पर-पुरुषको पिता-भाई समझना ।

१०. पर-स्त्रीको मा-बहिन तथा पर-पुरुषको पिता-भाई माननेको कुसंस्कार बतलाना ।

११. सदा सत्य, प्रिय और हितकर थोड़े वाक्य बोलना ।

११. मिथ्या, कठोर तथा अहितकर अनर्गल बोलतेही जाना ।

१२. देवालयोंमें जाना, धार्मिक पर्वोत्सव मनाना ।

१२. गंदे सिनेमाओंमें, क्लबोंमें जाना, गंदी पार्टियोंका आयोजन करना ।

१३. सत्साहित्यका सुनना, पढ़ना, नित्य स्वाध्याय करना ।

१३. गंदे, अश्लील, राग-द्वेष तथा मिथ्याचार बढ़ानेवाले साहित्यको पढ़ना ।

१४. मन तथा इन्द्रियोंको बशमें रखना, उनको सदा सद्बिचार तथा सदाचारमें ही ल्याये रखना ।

१४. व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके नामपर मन-इन्द्रियका गुलाम बनकर उच्छृङ्खल आचरण करना, कुविचार तथा दुराचारमें संलग्न रहना ।

१५. दूसरोंकी निःस्वार्थ सेवा बने तथा हित हो, इस प्रकारके विचार तथा कार्यमें लगे रहना ।
१६. देशके लिये व्यक्तिगत स्वार्थका बलिदान करके देशके हितमें ही अपना हित समझना ।
१७. जिसमें कम-से-कम आवश्यकता हो, ऐसा सादा, सीधा, सुखी जीवन बनाना और उसके निर्वाहके लिये सत्य तथा न्यायके मार्गसे किसीका भी अहित न करते हुए आवश्यकताभर अर्थोपार्जन करना एवं उसमेंसे कुछ-न-कुछ बचाकर अभावग्रस्त प्राणियोंकी सेवामें लगाना ।
१८. 'सबके हितमें ही अपना हित है, यह समझते हुए प्रत्येक कार्यको 'सर्वभूतहित'की दृष्टिसे देखकर ही उसमें प्रवृत्त होना ।
१९. अपना सुख देकर दूसरोंका दुःख हरण करना । दूसरोंके दुःखको भारी दुःख मानना ।
२०. अपने तथा अपने दलके अन्यायका समर्थन न करके सदा सदाचार, न्याय तथा धर्मके पक्षमें रहना ।
२१. अपनी-अपनी उपासनापद्धतिके अनुसार प्रतिदिन कुछ समय नियमितरूपसे भजन-पूजनमें लगाना ।
२२. धर्मको जीवनकी सबसे बड़ी आवश्यकता मानकर दृढ़ताके साथ धर्मका पालन करना तथा किसी भी काम, लोभ अथवा भयसे धर्मका त्याग न करना । धर्म-पालनके लिये कष्ट स्वीकार करना ।
२३. सभीके साथ छल-कपटसे रहित सरल व्यवहार करना ।
२४. परलोक तथा परमात्माके भयसे पापसे बचना ।
२५. अपने पूर्वज, इतिहास, विचारधारा, तीर्थ-देवस्थान, ऋषि-मुनि तथा शास्त्रोंके प्रति आदर-बुद्धि रखना ।
१५. दूसरोंको कैसे ठगा जाय तथा कैसे उनका बुरा हो जाय, ऐसे विचार तथा कार्यमें प्रवृत्त रहना ।
१६. व्यक्तिगत स्वार्थ-साधनके सामने देशको भूल जाना, बल्कि व्यक्तिगत लाभके लिये ही देश-भक्तिका बाना धारण करना ।
१७. जीवनको उच्चस्तरका बनानेके मोहमें, विलासिता, शौकीनी, आरामतलबी आदिके लिये मिथ्या आवश्यकताओं और अभावोंको बढ़ा लेना तथा उनकी पूर्तिके लिये असत्य, अन्याय, छल, कपट, चोरी, ठगी तथा हिंसासे धनोपार्जन करना । परस्वापहरणमें भी संकोच न करना ।
१८. अपने जरा-से स्वार्थ-साधनके लिये भी दूसरोंके कष्ट, दुःख तथा नाशकी तनिक भी परवाह न करते हुए दूसरोंको गौरवपूर्ण मनसे हानि पहुँचाना ।
१९. अपने तनिक-से सुखके लिये दूसरोंको दुखी बनाना । दूसरेके दुःखको अपना सुख मानना ।
२०. अपने तथा अपने दलके लिये, जानते हुए भी अनाचार, अन्याय तथा अधर्मका समर्थन एवं अवलम्बन करना ।
२१. उपासनाको अनावश्यक तथा पिछड़े लोगोंका काम समझकर परनिन्दा या परचर्चामें ही समय बिताना ।
२२. धर्मको अवनतिमें कारण बताते हुए धर्म-पालनसे विमुख रहना एवं जान-बूझकर काम, लोभ और भय आदि दुर्बुद्धियोंके वश होकर अधर्ममय जीवन बिताना ।
२३. छल-कपटको बुद्धिमानी तथा चातुरी मानकर उसकी आवश्यकता समझते हुए अपने अत्यन्त निकटके आत्मीयस्वजनोंके साथ भी कपटमय व्यवहार करना ।
२४. परलोक तथा परमात्माको मनुष्य-रचित कुसंस्कार मानना और बतलाना ।
२५. विकासवादके भ्रान्त सिद्धान्तके अनुसार पूर्वकी सभी चीजोंको अविकसित मानकर उनकी अवज्ञा करना ।

२६. अपनी अच्छी प्रथाओंमें गौरव-बुद्धि रखना । २६. आँखें मूँदकर परानुकरण करना तथा अपनी प्रथाओंमें लज्जा करना ।
२७. सरल हृदयसे सच्चे सम्मान तथा सत्यका व्यवहार करना । २७. कूटनीतिपूर्ण, दिखाऊ सम्मानका दम्भपूर्ण व्यवहार करना ।
२८. छिपकर पाप करनेमें भी पतन समझना । २८. छिपे सफल पापमें बुद्धिमानी तथा दक्षता मानना ।
२९. सब प्राणियोंमें भगवान् या आत्मा समझकर सबका हित साधन करना । २९. केवल अपने शरीर तथा नामको ही सब कुछ मानकर उसीकी सुख-सुविधाके लिये चिन्तन तथा प्रयास करना ।
३०. शारीरिक श्रमके द्वारा कमखर्ची तथा तन्दुरुस्तीको बढ़ाना । अपना काम अपने हाथसे करनेमें लाल तथा सुखका अनुभव करना । ३०. अकर्मण्यता, आरामतलबीके वश होकर शारीरिक श्रम न करना, मशीनोंद्वारा ही सब काम होने लगे, ऐसी इच्छा करना । अपना काम आप करनेमें लज्जा बोध करना ।
३१. अपनी पूँजी तथा शक्तिसे अधिक तथा जीवनकी आवश्यकतासे अधिक व्यापारादि प्रपञ्चोंको न बढ़ाना तथा इसमें सुख, संतोष, निश्चिन्तता, निर्भयता तथा स्वाधीनताका अनुभव करना । ३१. परायी पूँजीसे, अपनी शक्तिसे बाहर असीम आवश्यकताकी कल्पना करके अमर्याद व्यापारादि प्रपञ्चोंको बढ़ाकर नित्य दुःख, असन्तोष, चिन्ता, भय और पराधीनताका अनुभव करना ।

मेरी नीचता और दयामयका स्वभाव

घोर असाधु मलिन-मन, ठगता जगको सजकर साधु सुवेश ।
करता प्रेम-भक्तिका अभिनय, नहीं प्रेमकणका लवलेख ॥
रोता, अश्रु बहाता, हँसता, करता नृत्य मधुर, उद्दण्ड ।
करता लीला-रसकी बातें बनता त्यागी मिथ्या भंड ॥
दुष्टहृदय सज शिष्ट, सिखाता शुद्धाचार बताता धर्म ।
असदाचार-निरत नित छाया तन-मन केवल कपट अधर्म ॥
उत्सव-पर्व मनाता मैं, दिखलाता नित्य अमित उत्साह ।
रहता सदा पुजानेपर मन, रहती भरी मानकी चाह ॥
पूजा कभी न करता प्रभुकी, करता मैं प्रभुका उपहास ।
इन्द्रिय-सुख ही सदा खोजता, अधम बना भोगोंका दास ॥
नहीं क्षमाके योग्य कभी ये मेरे अति उत्कट अपराध ।
सर्वदृष्टि अन्तर्यामीको भी रखता छलनेकी साध ॥
नरकोंसे भी नीची गतिके योग्य पापका पारावार ।
तदपि दयामय नहीं भूलते निज स्वभाववश परमोदार ॥
कहते—“सभी छोड़ आश्रय तू आ जा मेरी शरण अनन्य ।
धो डालूँगा पाप-ताप सब तुरत बना दूँगा मैं धन्य !” ॥

परमार्थ-पत्रावली

(भद्रेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पत्र)

सादर हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला । आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है:—

आपने कल्याणके लेखों और पुस्तकोंको पढ़कर जो कुछ समझा है, वह समझ आपमें प्रभु-कृपासे पहलेसे ही थी । लेख और पुस्तकें तो उसे उद्बोधित कर देती हैं, उस समझके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये; क्योंकि आप मनुष्य हैं । यह जीवन सांसारिक रस लेनेके लिये नहीं मिला है । पढ़नेकी आसक्ति पूरी करना भी इस जीवनका लक्ष्य नहीं है ।

भोगोंमें रस है ही नहीं, तब आपने चखा कहाँसे ? आपको भ्रम हो गया, आप जरा विचार तो करें । मन भोगोंकी ओर दौड़ता है, कामना बढ़ती है, पर पूरी होती नहीं, तब दुःख मिलता है कि सुख ? किसी स्त्रीको देखकर मोहित होनेका परिणाम क्या होता है ? खुद अपनी समझका आदर करते नहीं, मनको समझाते हैं । इस समझानेसे क्या होगा ? दोष मनका नहीं है, वह तो यन्त्र है, आप स्वयं साथ न दें तो वह कहीं नहीं जा सकता ।

नौकरीसे तंग आना भी बेसमझी है । जो काम आपको नौकरीकी हैसियतसे मिला है, उसे कर्तव्य मानकर उत्साहपूर्वक पूरी शक्ति लगाकर करना चाहिये । काम करते हुए भी आप भगवान्को हर समय याद रख सकते हैं । मालिकोंका उचित काम करना ही चाहिये । उसे भाररूप नहीं मानना चाहिये । रेलमें बिना टिकट कदापि यात्रा नहीं करनी चाहिये । यदि मालिक-लोग किराया न दें तो जानेमें अपनी असमर्थता स्पष्ट कह देनी चाहिये । दूसरोंकी देखा-देखी न्यायको नहीं छोड़ना चाहिये । काम अधिक करना पड़े, इससे नहीं ऊबना चाहिये । जिसको पाप समझें, उसे न करनेमें कोई कठिनाई नहीं है, केवल लोभ और

भयसे कठिनाई प्रतीत होती है । आगेका काम पहलेसे बना-बनाया पड़ा है, आवश्यकता है विश्वासकी ।

आप जो कुछ पाठ-पूजन और जप आदि करते हैं, उसे श्रद्धा और विश्वासपूर्वक करते रहिये । उसके बदलेमें भगवान्के प्रेमके अतिरिक्त और कुछ मत माँगिये और भगवान्की कृपासे जो जानकारी प्राप्त है, उसके द्वारा अपने दोषोंको खोज-खोजकर मिटाते रहिये । गुणोंका अभिमान और दिखावा मत कीजिये । की हुई भूलको पुनः न करनेका दृढ़ विचार रखिये, यही उन्नतिका मार्ग है ।

प्रातः उठनेमें प्रयत्नकी क्या आवश्यकता है । समय-पर शयन करनेसे, रातमें व्यर्थ बातें और चिन्तन न करनेसे, यथासमय उठनेका संकल्प करके सोनेसे ठीक समयपर स्वतः जग सकते हैं । सिनेमा देखकर सद्भावका, समयका और पैसोंका व्यर्थ खर्च करना, बुरे भावोंसे हृदयको अपवित्र करना बड़ी भारी भूल है, इसका परिणाम कभी हितकर नहीं है ।

भजन विश्वास और प्रेमसे होता है । जब करना पड़ता है तबतक तो वह रुचिकर नहीं होता । प्रभुको किसी अंशमें मानते हैं पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वासपूर्वक नहीं मानते । प्रार्थना भी अपने मनकी बात पूरी करनेके लिये ही करते होंगे । भगवान्के भजन-स्मरणमें लीन होना कहीं बाहरसे नहीं सीखना है । मिथ्या भोगोंकी कामना और आसक्ति छोड़कर भगवान्में विश्वासपूर्वक प्रेम करनेसे वह अपने-आप हो सकता है । इसमें आप पराधीन या असमर्थ नहीं हैं । भगवान्से प्राप्त शक्तिका दुरुपयोग करना और अपने विवेकके अनुसार कार्य न करना ही इसमें बाधक है जो कि आप स्वयं प्रमादवश करते हैं ।

अपने विवेकपूर्ण विचारोंके अनुरूप जीवन बनाना चाहिये, केवल विचारोंसे काम नहीं चलता । कपड़े प्रेस करनेका काम साधारण है । जिस कामसे संसारका विशेष हित हो वही काम करना चाहिये ।

क्या-क्या बढ़ा और बढ़ रहा है

विकाश कितना ? विनाश कितना ?

[विचारके लिये]

रेल, तार, टेलीफोन, नहर, पुल, सड़कें, मोटर, बस, ट्रक, ट्रेक्टर, हवाई जहाज, बिजली बड़े-बड़े, मकान ।

संस्थाएँ, यूनिवर्सिटी, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, सभासमितियाँ, व्याख्यानवाजी, समाचार-पत्र ।

अदालतें, पंचायतें, मुकदमे, पुलिस, अपराध, चोरी, डकैती, ठगी, बेईमानी, मार-पीट, झगड़े ।

अस्पताल, औषधालय, दवाइयोंके कारखाने, विषमय दवाइयाँ, रोग, रोगी ।

आसक्ति, कामना, क्रोध, लोभ, अभिमान, असत्य, छल-कपट, दंभ, द्वेष, वैर, अधिकारलिप्सा, लालसा, अश्रद्धा, संदेह, आलस्य, प्रमाद, आडम्बर, दिखावा ।

अपवित्रता, फैशन, शौकीनी, विलासिता, आरामतलबी, अकर्षण्यता, महँगी, बेकारी, भुखमरी ।

गंदा साहित्य, गंदे गाने, गंदे चलचित्र, गंदे चित्र, गंदे पोस्टर और विज्ञापन, गंदे क्लब, गंदा वातावरण और गंदे विचार ।

भौतिकवाद, भोगवाद, जनतन्त्र-समाजवाद तथा साम्यवादके नामपर व्यक्तिवाद ।

अध्यात्म तथा ईश्वरमें उपेक्षा, धर्म तथा परलोकमें अविश्वास, धर्म-निरपेक्षताके नामपर अधार्मिकता, सुधारके नामपर अनर्गल आचरण ।

स्वेच्छाचार, अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, मिथ्याचार, व्यभिचार ।

चोर-पूजा, व्यभिचार-पूजा, अनाचार-पूजा ।

स्वार्थपरता, शोक, भय, विषाद, चिन्ता, डाह, कूटनीति, धोखेवाजी, दल, दलबंदी ।

अव्यवस्था, अनुशासनहीनता, उच्छृङ्खलता, उद्वण्डता ।

हिंसा, पशु-पक्षी-हत्या, विज्ञान तथा औषधनिर्माणके लिये हिंसा, हिंसाके बड़े-बड़े कारखाने, उद्योगके नामपर बड़ी-बड़ी हिंसाकी योजनाएँ ।

अभक्ष्य-भोजन, अपेय-पान, मद्यपान, उच्छिष्ट-भोजन, दिखाऊ सफाई, अशुद्धि, साबुन, तेल, पाउडर, क्रीम, स्रो, लिप्स्टिक ।

शास्त्र-निन्दा, ईश्वर-निन्दा, देव-निन्दा, ब्राह्मण-निन्दा, पूर्वज-निन्दा, अपनी सम्यता-संस्कृतिके प्रति अश्रद्धा, गुरुजनोंकी अवज्ञा, माता-पिताका अनादर, सम्मान्योंका अपमान, अपूज्योंकी पूजा ।

प्रान्तजनित राग-द्वेष, भाषा-जनित राग-द्वेष, जाति-जनित राग-द्वेष, वादजनित राग-द्वेष, सम्प्रदाय-जनित राग-द्वेष, दल-जनित राग-द्वेष ।

मीलें, कारखाने, व्यापार-केन्द्र, बाजार, सरकारी उद्योग, छोटे-छोटे उद्योग, उद्योगोंका सरकारीकरण ।

लोभवृत्ति, चोर-बाजारी, रिश्वतखोरी, वस्तुओंमें मिलावट, धोखादेही ।

सरकारी सहकमे, अधिकारी-कर्मचारी, शासनव्यय, कर्तव्यविमुखता, कामचोरी ।

सिनेमा, रेडियो, नाचगान, कन्याओं और तरुणियोंका संस्कृति तथा कलाके नामपर नाच-गान, निर्लज्जताकी प्रवृत्ति, कुवासनाको प्रोत्साहन ।

धन, धन-लिप्सा, धनमदान्विता, धनी-द्वेष, फिजूलखर्ची । सभी कार्योंमें सरकारी हस्तक्षेप, टैक्सोंकी सीमा-रहित भरमार, फलतः पैसा बचानेके लिये मिथ्याचारमें प्रवृत्ति ।

विज्ञान, विनाशक शस्त्रास्त्र, प्रकृति-विजयकी प्रचेष्टा ।

भक्ति और ज्ञानमें भेद

(लेखक—पं० श्रीदेवीदत्तजी मिश्र)

पद्मपुराणसे उद्धृत श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें अत्यन्त रोचक कथासे भक्ति और ज्ञानमें भेद समझाया गया है। उसमें भक्तिको माता और ज्ञान तथा वैराग्यको उसका पुत्र बतलाया है। इस रूपकमें एक बातकी त्रुटि मालूम पड़ती है। भक्तिके पतिके विषयमें ग्रन्थकारने बिल्कुल उदासीनता दिखलायी है। इसका वास्तविक अभिप्राय तो ग्रन्थकार ही जानते हैं। परंतु अपनी बुद्धिके अनुसार विचारनेसे यही प्रतीत होता है कि पाश्चात्तमैतिक शरीरकी उत्पत्तिके लिये माता और पिता दोनोंकी आवश्यकता होती है। ज्ञान और वैराग्यकी सृष्टि पाश्चात्तमैतिक नहीं है।

ग्रन्थकारने भक्तिकी श्रेष्ठता बतलानेके अभिप्रायसे ज्ञान-वैराग्यको पुत्रका स्थान दिया है। नारदजीका विचरण करना स्वभाव है। घूमते हुए नारदजीको भक्तिका दर्शन यमुना-तट-पर हुआ था। जिस समय भक्ति नारदजीको मिली, उस समय उसके दोनों पुत्र अत्यन्त जर्जर हो रहे थे। उनमें चलनेकी शक्ति नहीं थी। उनकी दशा देखकर भक्ति शोकसे मूर्छित हो रही थी। उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह रही थी। अपने रक्षककी खोजमें आँखें फाड़-फाड़कर वह चारों ओर देख रही थी। सैकड़ों स्त्रियाँ हवा कर रही थीं और बार-बार उसे समझा रही थीं। यथा—

दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः।

वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः॥

(श्रीमद्भा० माहात्म्य १।४०)

नारदजीको देखकर भक्ति बहुत प्रसन्न हुई; क्योंकि वह जानती थी कि भगवान्‌के भक्त परदुःखकातर होते हैं और दयालु भी होते हैं। अतः उसने उनको क्षणमात्र ठहरकर अपना दुःख सुननेके लिये प्रार्थना की।

नारदजी तो स्वयं ही चकित हो रहे थे; क्योंकि दो कंकाल शेष, समूर्ण वृद्ध पुरुषोंके लिये तरुणी स्त्री विलाप क्यों कर रही है। नारदजीने रोतेका कारण और उन दोनों वृद्ध पुरुषोंका परिचय पूछा। तब भक्तिने कहा—

मैं गौड़ देशमें उत्पन्न हुई और मेरा पालन-पोषण कर्णाटकमें हुआ। महाराष्ट्रमें किसी-किसी स्थानपर मैं रही,

परंतु गुजरातमें मैं वृद्ध हो गयी। ये दोनों मेरे पुत्र हैं, इनके नाम ज्ञान और वैराग्य हैं। थोड़े ही दिनोंमें ये वृद्ध हो गये। मैं भक्तिके नामसे लोकमें प्रसिद्ध हूँ। यथा—

अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ।

ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ॥

उत्पन्ना द्विविधे साहं वृद्धि कर्णाटके गता।

क्वचित् क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥

(श्रीमद्भा० माहा० १।४५, ४८)

इस रूपकसे यही समझमें आता है कि भक्ति ज्ञान और वैराग्यकी जननी है। इससे यह समझना चाहिये कि बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती; क्योंकि 'श्रुते ज्ञानाज मुक्तिः' ऐसा सिद्धान्त है, और ज्ञानकी उत्पत्ति भक्तिके, अतः मनुष्यको पहले भक्ति प्राप्त करनी चाहिये। फिर तो, अपने मातृप्रेमसे आकृष्ट होकर ज्ञान स्वयं आ जायगा। ज्ञानसे मुक्ति प्राप्त हो जायगी। अपने सहोदर भाई ज्ञानका सहायक वैराग्य है। ज्ञान प्राप्त होनेपर वैराग्य स्वयं हो जाता है। संसारकी वस्तुओंमें आकर्षण नहीं रह जाता। गीतामें भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(६।२२)

अशानी मनुष्य स्त्री, पुत्र, धन आदिको सुखका साधन समझकर अधिक-से-अधिक प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, और प्राप्त होनेपर अपनेसे बड़े हुए दूसरेको देखकर ईर्ष्या करता है; क्योंकि तृष्णाका अन्त नहीं है। परंतु ज्ञान प्राप्त हो जानेपर जो शान्ति प्राप्त होती है वह सांसारिक वस्तुओंमें प्रतीत न होनेसे शानी उसकी ओर आकृष्ट नहीं होता। भर्तृहरिने वैराग्यशतकमें लिखा है—

निःस्त्रोवष्टि शतं शती दशशतं लक्षंसहस्राधिपो

लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति।

चक्रेशः सुरराजतां सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं काङ्क्षति

ब्रह्मा विष्णुपदं हरिः शिवपदं तृष्णावधिं को गतः॥

सांसारिक वस्तुओंमें शान्तिका अभाव है, अतः उनसे शान्ति प्राप्त करनेकी आशा करना अज्ञानता है।

वास्तविक सुख और शान्ति भगवत्प्राप्तिमें है, जो ज्ञानके द्वारा उपलब्ध होती है। इसलिये गीता (४।३८) में ज्ञानको सबसे पवित्र कहा गया है। यथा—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

उस ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये श्रद्धाकी आवश्यकता होती है। भगवान्‌के नाम, गुण और प्रभावमें पूर्ण विश्वासके साथ अपने मनको स्थिर करनेका नाम श्रद्धा है। श्रद्धा होनेसे शीघ्र ही ज्ञानका उदय होता है और ज्ञानके उदय होते ही परम शान्ति मिल जाती है। भगवान्‌ने गीता (४।३९) में कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परं शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

श्रद्धासे भक्ति होती है। भज् धातुसे क्तिन् प्रत्यय करनेपर भक्ति शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है सेवा करना। भगवान्‌की सेवा है उनकी आज्ञाका पालन करना। अर्थात् अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मका पालन करते हुए सर्वत्र भगवान्‌के अस्तित्वका अनुभव करना। यह है भगवान्‌की भक्ति। सर्वत्र और सर्वदा भगवान्‌के अस्तित्वका अनुभव प्रह्लादजीको था। इस अनुभवका फल उन्हें यह मिला कि हिरण्यकशिपुने उनको मारनेके लिये हाथीसे कुचलवाया, आगमें जलाया, विष खिलाया; साँपोंसे कटवाया, अन्तमें स्वयं तलवारसे उनको मारना चाहा और पूछा 'तुम्हारा रक्षक भगवान्‌ कहाँ है। यदि सर्वत्र है तो खम्भेमें क्यों नहीं देख पड़ता।'।

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।
कासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्सम्भे न इदयते ॥
(श्रीमद्भा० ७।८।१३)

प्रह्लादके वचनको सत्य प्रमाणित करनेके विचारसे उस खम्भेसे ही अभूतपूर्व मृगेंद्रके रूपमें भगवान्‌ प्रकट हो गये। भगवान्‌ने केवल प्रह्लादके वचनको ही सत्य नहीं किया, अपने वचनको भी सत्य किया; क्योंकि उन्होंने ही कहा है—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥
(श्रीमद्भा० ९।४।६३)

भक्तके पराधीन होनेके कारण भक्तकी इच्छाके अनुसार ही भगवान्‌को चलना पड़ता है। वस्तुतः समझा जाय तो भक्ति ही पराकाष्ठापर पहुँच जानेपर ज्ञानरूपमें परिणत हो जाती

है। इसलिये जो केवल ज्ञानप्राप्तिके उद्देश्यसे भक्तिकी उपेक्षा करते हैं उनका परिश्रम व्यर्थ होता है। श्रीमद्भागवतमें महर्षि व्यासजीने ब्रह्मस्तुतिमें कहा है—

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यदूयथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।४)

भक्ति और ज्ञान—इन दोनोंमें कौन-सा मार्ग श्रेयस्कर है, ऐसा संदेह होनेपर अर्जुनने भगवान्‌से पूछा—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥
(गीता १२।१)

तात्पर्य यह है कि निराकार और साकार दोनोंकी उपासनासे मुक्ति प्राप्त होती है फिर इन दोनोंमें अन्तर क्या है, कौन अच्छा है और क्यों अच्छा है, ऐसा संदेह होना स्वाभाविक है, अतः अर्जुनने ऐसा प्रश्न किया। भगवान्‌ने उत्तर दिया—मुझमें मनको एकाग्र करके मेरे साकार स्वरूपकी उपासना करनेवाले उत्तम हैं; क्योंकि निराकार ब्रह्मकी उपासना कठिन है। कारण यह है सर्वात्मना निराकारमें अपनेको लीन करनेमें देहाभिमान छूटना कठिन होता है और साकार ब्रह्मकी उपासनामें भक्त सर्वात्मना भगवान्‌के भरोसे निश्चिन्त हो जाता है। भगवान्‌ उसके बनने और बिगड़नेके उत्तरदायी हो जाते हैं। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
(गीता ९।२२)

भगवान्‌ शङ्कराचार्यने अपने विवेकचूडामणि ग्रन्थमें मोक्षके साधनोंमें भक्तिको ही प्रधान माना है। यथा—

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।
मोक्ष-साधनकी सामग्रीमें भक्ति ही प्रधान है। उन्होंने भक्तिके दो भेद माने हैं—स्थूल भक्ति और सूक्ष्म भक्ति। यथा—
स्थूला सूक्ष्मा चेति द्वेधा हरिभक्तिरुद्दिष्टा ।
प्रारम्भे स्थूला स्यात्सूक्ष्मा तस्याः सकाशाच्च ॥

अर्थात् प्रारम्भमें स्थूल भक्ति होती है, वही बढ़ती हुई भक्ति सूक्ष्मरूपमें बदल जाती है। आरम्भमें भक्त भगवान्‌की कथाओंको सुनता है। पश्चात् स्मरण करता है। इसी क्रमसे नौ

प्रकारकी भक्तियोंमें प्रवेश करता है। श्रीमद्भागवतमें ब्रह्मादजीने अपने पितासे नवधा भक्तिका वर्णन किया है। यथा—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

(श्रीमद्भा० ७।५।२३)

ब्रह्मवैवर्तपुराणके सृष्टि-प्रकरणमें भगवान् शङ्करने नवधा भक्तिका वर्णन इस तरह किया है। यथा—

स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः ।

त्वच्चारुरूपभ्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥

समर्पणं चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् ।

वरं वरेशा ! देहीदं नवधाभक्तिलक्षणम् ॥

(ब्रह्मवैवर्त० सृष्टि० ६।१५-१६)

इसी नवधा भक्तिके सतत अभ्यास करनेसे भगवान्का अनुग्रह प्राप्त होता है और भगवान्के अनुग्रहसे स्थूलरूपा भक्ति सूक्ष्मरूपा हो जाती है। तब भगवान् अन्तःकरणमें नित्य निवास करते हैं।

भगवान् शङ्कराचार्यने लिखा है—

एवं कुर्वन्ति भक्तिं कृष्णकथानुग्रहोत्पन्ना ।

समुदेति सूक्ष्माभक्तिर्यस्माद्वरिन्तराविशति ॥

इस तरह भक्ति और ज्ञानमें भक्ति श्रेष्ठ है; क्योंकि ज्ञानी भगवान्की भक्तिका आश्रय लेते हैं। श्रीमद्भागवत (१।७।१०) में लिखा भी है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्मे ।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्यभूतगुणो हरिः ॥

तात्पर्य यह है कि जो जीवन्मुक्त हैं, जिनका बन्धन कट चुका है जैसे नारदजी प्रभृति हैं, वे भी भगवान्की भक्तिका आश्रय लेते हैं; क्योंकि भगवान्की भक्तिमें इतना रस है, इतना आनन्द है।

वस्तुतः देखा जाय तो भक्ति और ज्ञानमें कुछ भेद नहीं है। दोनोंसे भगवत्प्राप्तिरूप फल एक ही प्राप्त होता है। इसी अभिप्रायसे गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी रामायणके ज्ञान और भक्तिके निरूपण-प्रकरणमें कागभुशुण्डिजीके मुखसे कहलाया है। गरुड़जीने जब प्रश्न किया कि 'ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता।' तब कागभुशुण्डिजीने कहा—

भगतिहि ग्यानहि नहि कलु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा ॥

परंतु उन्होंने ही आगेकी चौपाईमें अन्तर भी बतलाया है। यथा—

ग्यान बिराग जोग विग्याना।

ये सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥

कहनेका तात्पर्य यह है कि ये पुरुष हैं, ये मायारूपी स्त्रीके रूपपर मोहित हो सकते हैं। इससे दृढ़ वैराग्य न होनेसे ज्ञानीको मायामें फँस जानेकी सम्भावना रहती है। परंतु भक्ति तो स्वयं स्त्री है। अतः कहा है—
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥

माया और भक्ति दोनों ही स्त्रियाँ हैं। अतः भक्तिके उपासक मायामें नहीं फँसते, यही इन दोनोंमें अन्तर है। यही भक्तिकी विशेषता है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

(रचयिता—डा० मोहनजी अवस्थी एम्० ए०, डी० फिल)

अंधकार आवरण हरो हे !

मेरे मन-मंदिरमें मोहन

मृदुल मनोहर चरण धरो हे !

X

X

X

यदि अभाग्यवश या स्वकर्मवश

दुःख-सरितामें कभी बहूँ मैं,

तो जीवनके प्रबल थपेड़े

हर्षित होकर सदा सहूँ मैं।

भँवर प्रसक्तो नाथ शरण दो

भीषण भयका हरण करो हे !

अंधकार आवरण हरो हे !

इस सीमित जीवन-वटमें

भरकर असीमता पूर्ण करो हे !

चरण-कमल-रजमें सारे

मद-मत्सर मेरे चूर्ण करो हे !

महामरणपर जीवनदायक

अमृत कणोंका क्षरण करो हे !

अंधकार आवरण हरो हे !

पढ़ो, समझो और करो

(१)

दरिद्रकी सेवा

घटना अलीगढ़की है। सत्य कथा है, कपोलकल्पित नहीं। एक विद्वान् पण्डितजीने मुझे बतलाया कि एक संध्याको वे अलीगढ़की नगरीमें एक पानकी दूकानपर खड़े थे। एक दृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण उनके पास आया। पण्डितजीके सामने हाथ फैलाकर उस ब्राह्मणने कहा—

‘चार पैसैका गुड़ दिला दीजिये।’

पण्डितजीको बुरा लगा। उन्हें विक्रमादित्य तथा कालिदासकी कथा याद आ गयी। विक्रमके दरबारमें नर-बलि करनेवाला एक राक्षस आया। उसने नर-बलिकी अनुमति चाही। भला ऐसी आज्ञा कैसे मिल सकती थी? उस राक्षसने कहा कि या तो अनुमति दो या मेरे प्रश्नका उत्तर दो—

नष्टस्य कान्या गतिः ?

‘जो नष्ट हो गया है उसकी और क्या गति होगी?’

इस टेढ़े प्रश्नका उत्तर देनेके लिये विक्रमने सात दिनका समय माँगा। यह भार कालिदासपर सौंपा गया। सातवें दिन प्रातःकाल संध्यावन्दनके समय कालिदास एक भिखारीके वेषमें उस कर्मकाण्डी राक्षसके यहाँ पहुँचे और भिक्षा माँगी। राक्षसने पूजन-पाठके समय एक दृष्ट-पुष्ट ब्राह्मणको भिक्षा माँगते देखकर उसे फटकारकर कहा—

‘तुम्हें लज्जा नहीं आती कि इतने दृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण होकर प्रातःपूजनके समय भीख माँग रहे हो?’

उस ब्राह्मणने कहा—

‘महाराज मैं जुआ खेलता हूँ?’

‘ब्राह्मण और जुआ, धिक्कार है तुमको।’

‘जुआ खेलते-खेलते मैं मदिरापान करने लगा।’

‘हे भगवान् ! तुम्हारा इतना पतन।’

‘मदिरा पीनेसे वासनावृत्ति जागी अतएव मैं वेश्यावृत्ति करने लगा हूँ।’

‘उफ, तुम्हारे पतनकी सीमा नहीं है।’

‘वेश्यावृत्तिके लिये धनकी आवश्यकता होती है। अतएव मैं चोरी करने लगा।’

‘तो फिर तुम ब्राह्मणत्व बिल्कुल खो बैठे?’

‘चोरी, वेश्यावृत्ति, मदिरा, जुआ—मैं दर-दरकी ठोक खाने लगा।’

‘तब तुम भिखारी बन गये छिः।’

राक्षसने घृणापूर्वक कहा।

‘तब भिखारी ब्राह्मण बोला—

नष्टस्य कान्या गतिः?’

राक्षसको उसके प्रश्नका उत्तर मिल गया। जिस ब्राह्मणका इतना पतन होगा। जो एक कुमार्गपर चलेगा उसे अनगिनत कुमार्गपर चलना पड़ेगा। वह नष्ट होकर रहेगा और उसकी अन्य गति क्या होगी। वह दर-दरकी ठोकरें खायेगा।

हमारे विद्वान् पण्डितजीने सोचा कि ऐसी ही कोई बात इस ब्राह्मणके साथ भी होगी।

उन्होंने उस ब्राह्मणसे कहा—

‘भाई ! तुम दृष्टपुष्ट हो। कोई कारोबार करो। भीख माँगना बड़ा भारी पाप है।’

भिखारीने पण्डितजीके नेत्रोंमें नेत्र गड़ाकर एक क्षणके लिये देखा। फिर दृढ़ स्वरसे बोला—‘हो सके तो गुड़ दिला दीजिये। वरना स्पष्ट उत्तर दीजिये। मैं ऐसे उपदेश रोज सुनता हूँ।’

पण्डितजीको उसकी बातोंसे ऐसा लगा कि वह अपढ़ नहीं है। उन्होंने फिर कहा—

‘यदि स्वयं नहीं कमा सकते तो तुम्हारी संतान तुम्हारा पालन-पोषण क्यों नहीं करती?’

भिखारीने सौम्य भावसे कहा—

‘पत्नी, संतान सभी निकम्मे निकल गये। बोलो, गुड़ खिलते हो या नहीं?’

अब हमारे विद्वान् मित्र उसकी स्थिर मुद्रासे इतने प्रभावित हो चुके थे कि उन्होंने पैसे निकाले, गुड़ खरीदा। जबतक वह गुड़ खाकर पानी पीता रहा, वे उसकी ओर देखते रहे। पानी पीकर वह आश्चर्य हुआ। फिर उसने पण्डितजीसे कहा कि बरा दूर मेरे साथ चलिये। पासमें ही एक उद्यान था। वहाँ

पहुँचकर वह भिखारी ब्राह्मण कुछ क्षण मौन रहा । फिर यकायक उस आशुकि पण्डित भिखारीने कहा—

विद्यासत्कविता तथा सुजनता सेवापि च प्रार्थना
पञ्चैताः परिणिन्यरे जनयितुं वित्तात्मजं यत्नतः ।

न्यापारं सकलं विहाय नितरां तत्रैव रेमे मुहुः
किं कुर्वे कुटिलाशयेन विधिना पञ्चापि वन्ध्याःकृताः॥

उस ब्राह्मणने कहा कि 'मैंने अपने जीवनमें पाँच विवाह किये । विद्यासे मैं पण्डित हो गया । कवितासे मैंने अच्छी कविता करना सीख लिया । सुजनतासे मैं बड़ा अच्छा जीवन, सदाचारी जीवन बिताने लगा । सेवासे मैंने नौकरी भी की । प्रार्थनासे मैंने चादुकारिता तथा प्रार्थना भी काफ़ी की । इन पाँचों स्त्रियोंके साथ मैंने सब काम छोड़कर दत्तचित्त हो रमण किया । पर अपने कुटिल भाग्यको क्या कहूँ कि ये पाँचों स्त्रियाँ वन्ध्या निकलीं । इनसे कोई संतान नहीं हुई जो मेरा पोषण करती । यानी सब कुछ करके देख लिया, मेरा भाग्य ही साथ नहीं देता । अतएव भीख माँगता फिरता हूँ ।'

प्रयत्न या परिश्रमसे ही धनकी प्राप्ति हो, ऐसा नहीं है । भाग्य बड़ी भारी वस्तु है । इसके एक ही झटकेसे सब करे-घरेपर पानी फिर जाता है । मनुष्यके जीवनमें भाग्य बड़ी भारी वस्तु है । दरिद्रता दुर्भाग्यके कारण भी होती है । अतएव भाग्यके लिये भाग्यके स्वामी भगवान्की शरणमें जाना चाहिये ।

किंतु, धन उसीके पास आता है जो दूसरेके दुर्भाग्यको समझता है, पहचानता है या जानता है । जिसके मनमें दूसरेके दुर्भाग्यके प्रति कोई सहानुभूति नहीं, उसका जीवन अन्ततोगत्वा भाग्यशाली नहीं रह सकता । हमारे भाग्यका विधाता दरिद्र है । दूसरेकी दरिद्रता है । जो दरिद्र होता है, वह संसारको अधिक अच्छी तरहसे पहचानता है । वह संसारसे अधिक परिचित है । इसीलिये तो लिखा है—

भो दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः ।

पद्म्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन ॥

‘हे दारिद्र्यदेव ! तुमको नमस्कार । तुम्हारे प्रसादसे ही मैं सिद्ध हो गया हूँ । मैं दरिद्र हूँ, मेरी ओर कोई नहीं देखता है, पर मैं संसारभरकी ओर देख रहा हूँ ।’

एक दरिद्रको जब संसारमें, जीवितोंकी बस्तीमें कहीं सहारा नहीं मिला, तब वह मरनेवालोंके स्थानपर गया । वह श्मशान जा पहुँचा । वहाँ उसने देखा कि एक शव बड़े

आरामसे लेटा है । विश्राम कर रहा है । उसकी यह शान्ति तथा सुख देखकर दरिद्रने उससे कहा—

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्रहं गुरुं दारिद्र्यभारं सखे
श्रान्तस्तावदहं चिरं मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम् ।
इत्युक्तो धनवर्जितेन सहसा गत्वा श्मशानं शवो
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितः ॥

‘हे सखे ! जरा एक क्षणके लिये उठकर मेरी दरिद्रताका बोझ सँभाल लो । मैं इसे ढोते-ढोते थक गया हूँ और तुम आरामसे सो रहे हो ।’ श्मशानमें जब शवने दरिद्रकी यह बात सुनी तो उसने सोचा कि दरिद्रतासे कहीं अधिक अच्छा है मर जाना । यह सोचकर वह चुप-चाप लेटा ही रहा । उसने दरिद्रकी प्रार्थनाका कोई उत्तर ही नहीं दिया ।’

जब दरिद्रता इतनी बुरी चीज है तथा दरिद्रका साथी मुर्दा भी नहीं है, तब हम अपने सीमित-साधनोंमें उसकी सहायता तो कर ही सकते हैं । भिखारी हमसे भीख नहीं माँगने आता । वह तो हमें सीख देने आता है कि ‘दो, भाई । दो । दान दो । नहीं दोगे तो हमारे-जैसे हो जाओगे ।’

भिक्षुका नैव याचन्ति शिक्षयन्ति गृहे गृहे ।

देयं देयं पुनर्देयं न देयं फलमीदृशम् ॥

इस संसारमें जो कुछ प्रकाश है वह धनी तथा समृद्धि-की ज्योतिसे नहीं, पीड़ित तथा परित्यक्तकी ज्योतिसे है । यदि अन्धकारसे प्रकाशमें आना है तो दरिद्रकी आत्माको पहचानना होगा ।

क्या खबर सितम नवाज़ बे-खबर जहानको ।

दिल जलोंकी आहसे हो रही है रोशनी ॥

मृत्यु एक निश्चित सत्य है । अमीर हो या गरीब, मरना सभीको है । यदि मरना निश्चित है तो फिर धनकी गठरी भी क्या काम देगी । धन-संचय करनेवालेने यदि केवल उसका संचय किया और दूसरेकी सहायता नहीं की तो निश्चय ही मृत्युके समय उसके प्राण बड़े संकटमें रहेंगे ।

पूछत पूत कपूत बाबू धन केतनों कहाँ ?

प्राण परे साँकरे न हाँ करे न ना करे ।

जीवनके उस पार धनका नहीं, निर्धन तथा परसेवा-परायणका महत्व होता है । यही सद्गुरु हमें सिखाते हैं, अन्यथा उस पार क्या है, कौन जाने ।

उतते कोड न आइआ जासे पूछूँ धाय ।
इतते सब कोइ जात है मार लदाय लदाय ॥
उतते सतगुरु आइआ, जाकी बुधि है धीर ।
भवसागरके जीवको खेइ लगावे तीर ॥

बाबा कबीरकी यह वाणी याद रखनी चाहिये । हमें दूसरेकी या अपनी दरिद्रतापर दया नहीं, संकोच करना चाहिये । उसे कर्म तथा भाग्यका फेर, दोनों ही मानना होगा । भाग्य तथा कर्म सद्गुरुकी कृपा तथा उपदेशसे सुधरते हैं । पर, अपने सुधारके साथ दूसरेके सुधारकी बातें भी सोचनी चाहिये । मानव-जीवनकी पहेलीको यदि सही ढंगसे सुलझाना है तो अपने तथा परायेके भाग्यको समान रूपसे सँवारना होगा । केवल अपना-अपना करनेसे कुछ नहीं होता । जीवनमें साहसके साथ, श्रद्धाके साथ, विश्वासके साथ, भगवान्‌में आस्था रखकर जो व्यक्ति जीवन बिताता है, उसीका जीवन सफल होता है, अन्यथा वाल्मीकिरामायणके अनुसार:-

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था न्यवसीदन्ति न्यसनं चाधिगच्छति ॥

‘जो पुरुष निरुत्साह, दीन और शोकाकुल रहते हैं, उनके सब काम बिगड़ जाते हैं और वे बहुत बड़ी विपत्तिमें पड़ जाते हैं ।’

—श्रीपरिपूर्णानन्द वर्म

(२)

लालचके बदले ईमानदारी

गत २३ जुलाईकी बात है, मैं और मेरे पिताजी श्रीरामचरित्र पाण्डेयजी छपरासे आ रहे थे । छपरामें हमलोग श्री एस० यम० राजा एक्सपोर्टके यहाँसे आ रहे थे । छपरामें भगवानबाजार स्टेशनपर चढ़े । वहाँसे हमलोगोंको मोतीहारी आना था । हमलोगोंके पास करीब छः सौ रुपये थे, जिसमें सौ मेरे पास और पाँच सौ पिताजीके पास थे । पिताजीने उन रुपयोंको अपनी ऊपरवाली जेबमें रख लिया था । ट्रेनमें अधिक भीड़ होनेके कारण पिताजी ऊपरके पाटियेपर, जिसपर सामान रक्खा जाता है, चढ़ गये और बिस्तरा बिछाकर सो गये । उनके चढ़नेके समय ही रुपये जेबसे निकलकर, नीचे एक बंगाली महिला बैठी थी, उसके पैरोंपर गिर पड़े थे । उस समय तो उस महिलाने कुछ भी नहीं कहा, किंतु जब

गाड़ी मुजफ्फरपुरमें पहुँची और हमलोग अपने बिस्तारोंको सँभालकर चलने लगे, तब उस महिलाने पूछा कि ‘आपका कुछ छूटा भी जा रहा है क्या?’ पिताजीने देखा तो उनको कुछ मालूम नहीं हुआ । उसने नोटोंका बंडल निकालकर दिया और नोट कैसे कब गिरे थे यह सुनाया । पिताजी बहुत प्रसन्न हुए और उन देवीका परिचय प्राप्तकर हमलोग प्रसन्नतासे अपने घर लौटे । उन देवीका नाम श्रीविमला कुमारी था । वे कलकत्तामें रहती हैं । उनकी सदाशयता और महानताके हमलोग सदा कृतज्ञ हैं ।

—रामदर्शन पाण्डेय

(३)

आत्मसंजीवनी

दि० १९-३-६१ रविवारको प्रातः अपने ही विषहर जंगल डभौरा (रीवाँ) म. प्र. में चलते हुए कुटियासे लगभग सौ गज दूर पेड़के नीचे मुझे लकवा हो गया । एक घंटे भरमें धीरे-धीरे होशमें ही पाँवसे सिरतक सारा दक्षिणाङ्ग गतिहीन—शून्य हो गया । मैं घबराया नहीं, संसार मिट्टी और जीवन निःसार प्रतीत होने लगा, समझा कि देहत्याग होगा; क्योंकि लकवासे ग्रस्त होकर वैज्ञानिक इलाजसे लोगोंको बरबाद और मरते देखा था; अतः स्वयं अस्पष्ट लाचार वाणी बोलते और कलम पकड़नेसे लाचार होकर दूसरेसे माथा फोड़ करते हुए करीब पचास पत्र मित्रों, स्नेहियों और पत्रकारोंको लिखवा दिये । आघा अङ्ग बेकार जड़वत् होनेसे मैं सालभरके बालकसे भी गया-बीता था ।

लोग मुझे देखने आते, तेल मालिश दवाकी राय देते, डॉक्टर अस्पतालकी बात करते ।

क्या डॉक्टर, अस्पतालके लोग रोगी नहीं होते, नहीं मरते ? दुनियाँमें सचमुच रोगकी दवा होती तो लोग रोगी न होते और न मरते । दवा अन्धविश्वास और अधिक रोगी बनानेके लिये घोखेका सौदा है ।

मैं उसी पेड़के नीचे, खुली वायु और धूपमें पड़ा रहा; भोजन त्याग दिया; केवल गरम पानीके बाह्यान्तर प्रयोग करता रहा । रोगके आक्रमणकी क्रिया जड़ता तथा आत्मचिकित्सामें क्रमशः अङ्गोंमें स्पन्दनका अनुभव मैंने दिन-रात करते हुए देखा है कि शरीरमें आत्मा कैसे कार्य करता है । तुलसीदासजीने कहा है—

‘कहियत मित्र न मित्र’

(४)

प्राचीन उपनिषत्कारोंने कहा है—

यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति ।

जिससे सब ज्ञात हो सके वही विज्ञान है ।

सूर्य आत्मा जगतस्तत्पुत्रश्च ।

सूर्य स्थावर-जंगमका मूल है ।

वह आत्मसंजीवनी मेरे जीवनमें स्वयंसिद्ध प्रमाणित हुई। मैं चार दिनमें स्पष्ट बोलते हुए, अब लिखता-पढ़ता बारह दिनमें चलने-फिरने लगा हूँ । कल ही एक फर्लौंग चला था । रोग हमारा शत्रु नहीं, वरं हमारे विकारके रूपमें हमारा चिकित्सक मित्र है, तन-मनका शोधक है । इतना ज्ञान और आत्मसुधार लोग कर सकें तो संसारमें रोग न हो । परंतु वैज्ञानिकोंने आत्मशोध न करके परमाणु और कीटाणुओंकी शोध करके वैज्ञानिक खेतीद्वारा संसारसे रोग-दुःख मिटानेके और उन्नतिके नामपर रोग बढ़ाये और विनाशकी स्थिति उत्पन्न कर दी । विज्ञानमें आत्मा नहीं, प्राण नहीं । वैज्ञानिक बतावें कि दो नथुनोंसे श्वास चलनेका रहस्य क्या है ?

ओषधि कही जानेवाली वस्तुएँ जड़ और विष तुल्य हैं, उनमें जीवन नहीं । धोखेका सौदा है । लकवेसे अथवा अन्य रोगोंसे ग्रस्त लोगोंको वैज्ञानिकोंके आश्रयमें चिकित्सा कराते देख लोगोंको बरबाद होते मरते हुए मैंने देखा है । आत्मज्ञान—आत्मशोधके बिना विज्ञान फीका और नपुंसक है । जो लोग इतर चिकित्सापद्धतियोंको अवैज्ञानिक कहते हैं, प्रकृतिको शरीरका शत्रु कहते हैं, वे पहले अपनी वैज्ञानिकता सिद्ध करें । विज्ञानसे प्रकृति पैदा हुई या प्रकृतिमेंसे विज्ञान पैदा हुआ ?

आज बारह दिनमें, किसी विकृत ज्ञानकी ओषधि बिना मैं लकवासे मुक्त हूँ, दूसरे लोग भी मुक्त हो सकते हैं । विज्ञानकी शरणमें गये हुए लोग बारह महीनेमें बहुत धन व्यय और लगातार अनेक विद्युत् और चमत्कारी प्रयोगसे अच्छे न होकर, बरबाद अपंग बने हुए हैं । ईसामसीहने कहा है:—

Creator is He that is in you,

Than that which is in the world.

Nearer is He, than your hands
and feet.

इसको सिद्ध करो, यही जीवन है । —विश्वामित्र वमां

मंद करत सो करइ मलाई

लगभग चालीस सालकी बात है । रामतनु चादुज्यें हुगली जिलेके एक छोटे-से गाँवमें रहते थे । उनके पिता पुरोहितीका काम करते थे । पर उनकी इच्छा लड़केको पढ़ाकर उसे अच्छी नौकरीमें लगा देनेकी होनेसे उन्होंने रामतनुको इट्टेंसकी परीक्षा पास करवाकर कलकत्ते भेज दिया और वहाँ एक सरकारी महकमेमें नौकर रखवा दिया । वे वहाँ पढ़ते भी रहे । धीरे-धीरे एफ० ए० कर लिया । उन्नति करते-करते दो सौ रुपये महीनेपर एक सरकारी स्कूलमें हेडमास्टरी करने लगे । उस जमानेमें दो सौ रुपये महीनेकी नौकरी बहुत बड़ी चीज थी । इससे रामतनु बाबूका गाँवमें गौरव बढ़ गया था । गाँवमें उनका एक पड़ोसी अधरचन्द्र था । वह रामतनुकी इस उन्नति तथा गौरवसे बहुत जलता था, और समय-समयपर रामतनुकी बदनामी करने, उनपर लाञ्छन लगाने तथा नुकसान पहुँचानेकी चेष्टा किया करता था । रामतनु तथा उनकी स्त्री दोनोंके स्वभाव बहुत अच्छे थे । वे अभिमान तो करते ही नहीं, किसीका बुरा करनेकी कल्पना तो उनके मनमें कभी आती ही नहीं, वे गाँवभरका सहज ही भला चाहते थे और यथासाध्य किया भी करते थे । इससे गाँवमें उनकी शोभा-कीर्ति और भी बढ़ गयी थी । यह भी अधरचन्द्रकी जलन बढ़ानेमें एक खास कारण था । रामतनुको उसकी इस मनोवृत्तिका कुछ भी पता नहीं था ।

एक समय छुट्टियोंमें रामतनु गाँवपर आये हुए थे । अधरचन्द्रने दो-तीन गुंडोंको पहलेसे ही तैयार करके एक दुष्ट-योजना बना रखी थी । बाहरसे किसी एक आवारा स्त्रीको वहाँ बुला लिया था । स्त्री थी कि किसी दिन वह स्त्री व्यर्थ ही हो-हल्ला मचावे, रामतनुपर लाञ्छन लगावे और उसी समय वे गुंडे तथा अधरचन्द्र उस स्त्रीकी रक्षाके बहाने रामतनुपर दूट पड़ें । स्त्रीके अनुसार ही काम हुआ । एक दिन रामतनु कहीं बाहरसे घर आ रहे थे । दुपहरका समय था । एक छोटी-सी सुनसान गली थी । निश्चित स्थानपर वह स्त्री खड़ी थी । रामतनु उसके पाससे निकले कि उसने बड़े जोरोंसे चिल्लाकर पुकारा—‘छोड़ दे, छोड़ दे—बदमाश कहींका—‘हाय ! हाय ! तू ब्राह्मण मास्टर होकर मेरा शील लूटना चाहता है । अरे कोई बचाओ !’ रामतनु तो इसके-बक्के रह गये । वह रामतनुके बिल्कुल

समीप आ गयी थी। कपड़े अस्त-व्यस्त कर रखे थे उसने। अधरचन्द्र तो गुंडोंको लिये छिपा खड़ा ही था। तुरंत आकर हल्ला मचाने तथा रामतनुको गालियाँ बकते हुए उन्हें मारने लगा। गुंडे भी प्रहार करने लगे। रामतनुकी तो कुछ समझमें ही नहीं आया कि यह सब क्या और क्यों हो रहा है। हल्ला सुनकर आस-पासके घरोंमेंसे लोग निकल आये। खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी। गाँवके लोग तो रामतनुके स्वभावसे परिचित और उनके प्रति अत्यन्त सहानुभूति तथा श्रद्धा रखते थे। प्रायः सभी उनसे उपकार पाये हुए थे। रामतनुके उपकार तो अधरचन्द्रपर भी कम नहीं थे। पड़ोसीके नाते वह बीसों बार उनकी सहायता प्राप्त कर चुका था। एक बार तो अधरचन्द्रको प्लेग हो गया था। डबल गिल्टी थी। सारे गाँवमें प्लेग फैला था। घरवाले भी सब अधरचन्द्रको छोड़कर चले गये थे। उस समय एक रामतनु ही ऐसे थे जो अपने पड़ोसी अधरकी सेवामें चौबीसों घंटे लगे रहे, दवा-दारू की और उसे बचाया। घरवाले तो दस दिनके बाद लौटे थे। पर कृतज्ञ तथा दूसरेको दुःख देनेमें ही सुखका अनुभव करनेवाले अधरचन्द्रपर रामतनुके उपकारोंका कोई असर नहीं था। इसी दुष्ट स्वभाववश वह आज अपनी आसुरी क्रियामें लग रहा था। उसने तो हो-हल्ला इसलिये मचाया था—गाँव-वालोंको वह अपने पक्षमें कर ले। रामतनुके प्रति वे सब नाराज हो जायें तथा गाँवभरमें रामतनुकी बदनामी हो जाय। पर भगवान् तो सब देखते ही हैं। वहाँ एकत्र हुए गाँववालोंमें एकाधको छोड़कर प्रायः सभी रामतनुको सच्चा सत्पुरुष तथा निर्दोष मानते थे और अधरचन्द्रको दोषी! वे अधरचन्द्रके दुष्ट स्वभावसे भी परिचित थे। उनमेंसे एकने उस स्त्रीको भी पहचान लिया, वह समीपके गाँवकी ही एक बड़ी बदनाम दुश्चरित्रा थी। उसका पेशा यही था। गुंडे भी पहचाने गये। लोगोंने तुरंत रामतनुको बचा लिया। गुंडोंपर तथा अधरचन्द्रपर उनको रोष आ गया। वे सब इनपर दूट पड़े पर सात्त्विक-हृदयके श्रीरामतनु महाराज इसको नहीं सह सके। उन्होंने हाथ जोड़कर स्वयं बीचमें अपनेको डालकर उन सबको बचाया। हालांकि उस समय उनके सारे शरीरमें मारके कारण बड़ी पीड़ा हो रही थी। कनपटीके पास तथा बायें कंधेपर लाठीकी चोटसे रक्त बह रहा था। पर वे इसकी परवा न करके अपने स्वभाववश उन दुष्टोंको बचानेमें लग गये। आखिर अपनी शपथ दिवायी तथा

मारनेवालोंकी मार स्वयं सहनेको तैयार हो गये। तब उन दुष्टोंकी जान बची। वह स्त्री तो पहचाने जाते ही भाग गयी।

इधर यह सब देखकर द आदमी भागकर दो मील दूर एक गाँवमें थाना था वहाँ खबर देने पहुँच गये थे। उनसे इस जुल्मकी बातें सुनते ही दारोगाजी सिपाहियोंको साथ लेकर तुरंत चल दिये। दारोगाजी भी भाग्यसे रामतनुजीके द्वारा उपकृत थे। रामतनुजी विद्वान् तथा उच्च पदपर नौकरी करते थे, इससे सरकारी क्षेत्रमें उनका बड़ा आदर था, सभी उनकी इज्जत करते थे। उन्होंने ही आरम्भमें दारोगाजीकी नौकरी लगायी थी। दारोगाजीने पहुँचते ही जाँच की और गुंडोंसहित अधरचन्द्रको पकड़ लिया। पचासों आदमी गवाही देनेको तैयार थे। सिपाहियोंको भेजकर दारोगाजीने उस आवारा स्त्रीको भी पकड़ मँगाया। उसने आते ही अपराध स्वीकार किया और बताया कि 'वह तो अधरचन्द्रके द्वारा पंद्रह रुपये पाकर उसके कथनानुसार करनेको आयी थी। उसे जैसा करनेको अधरचन्द्रने कहा था, वैसा ही किया। उसे यह पता नहीं था कि ये लोग रामतनु बाबूको मारेंगे।'।

गुंडे भी पुलिसके भयसे ढीले पड़ रहे थे। यह सब देखकर अधरचन्द्रके होश हवा हो गये। वह बिल्कुल घबरा गया, काँपने लगा और उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। यह सब देखकर रामतनु बाबू बहुत दुखी हो रहे थे। उन्हें अपने अपमान तथा चोटका कष्ट तो भूल गया। वे अधरचन्द्रके दुःखसे दुखी होकर उसे छोड़ देनेके लिये दारोगाजीसे विनम्र अनुरोध करने लगे।

दारोगाजीने बड़े आदरसे, परंतु कड़ाईसे कहा कि—'रामतनु बाबू! आप पुलिसके काममें दखल न दीजिये। हमने दुष्टोंको रंगे हाथों पकड़ा है और हमारे पास इनको सजा दिलानेके लिये सबूत तथा गवाह मौजूद हैं। अपराधोंका घटाना पुलिसका कर्तव्य है। अपराधोंका घटना अपराधियोंको दण्ड मिलनेसे ही सम्भव है। हम इस सम्बन्धमें आपका कोई अनुरोध नहीं सुनना चाहते।' रामतनुजीने फिर बहुत कहा, तब दारोगाजीने कहा कि—'हमने तो आपके धावों तथा चोटोंकी जाँच करके रिपोर्ट देनेके लिये हुगलीसे सरकारी डाक्टरको बुलाया है और आप इन दुष्टोंको छुड़ाना चाहते हैं।'।

पुलिसवालोंने रामतनु बाबूको आदरसहित उनके घर

पहुँचा दिया। वहाँ एक सिपाही इस कामके लिये बैठा दिया गया, जो डाक्टर आनेपर उनकी रिपोर्ट लेकर थानेपर आ जाय। गाँवके बहुत-से लोग रामतनु बाबूके घरपर जमा हो गये। सभी चाहते थे दुष्टोंको दण्ड मिले। पर रामतनु बाबूको बड़ा मानस-क्लेश हो रहा था। वे किसी भी उपायसे अधरचन्द्रको बचाना चाहते थे। बड़ी व्याकुलता थी उनके कोमल हृदयमें—

‘पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता।’

वे गाँववालोंसे बोले—‘देखिये, मनुष्य अपने-अपने स्वभावके अनुसार बर्ताव-व्यवहार करता है। परंतु दुःख तो सभीको होता है। आज मेरे कारणसे अधरचन्द्र तथा उसके परिवारको कितनी पीड़ा हो रही है। सचमुच उनकी इस पीड़ामें मैं ही कारण हूँ। किसी भी हेतुसे हो, अधरबाबू मेरे कारणसे दुखी थे, और उस दुःखने ही उनसे ऐसा व्यवहार करवा दिया। वस्तुतः मुझपर जो मार पड़ी, वह तो मेरे अपने ही पूर्वकृत कर्मका फल है। मेरा प्रारब्ध ऐसा न होता तो अधरचन्द्रमें क्या शक्ति थी कि वे मुझको कष्ट पहुँचा सकते। यह तो मेरे ही कर्मका फल मुझे मिला। वे भूलसे इसमें निमित्त बनकर अपना बुरा कर बैठे, यह उनकी भूल है। भूला हुआ आदमी दया तथा क्षमाका पात्र होता है। वह तो पागल है न? अतएव मेरी प्रार्थना है—एक बार हमलोग चलकर दारोगाजीसे प्रार्थना करें कि वे इस मामलेको आगे बढ़ावें ही नहीं। वे न मानें तो फिर ऐसी व्यवस्था करें कि अधरचन्द्रके विरुद्ध कोई भी भाई गवाही न दें। मैंने तो अभी बयान दिया ही नहीं है। मैं अपने बयानमें कह दूँगा कि पैर फिसलकर गिर पड़नेसे मेरे चोट आ गयी।

‘आपलोग एक बातपर और विचार कीजिये—अबतक अपने गाँवका यश सर्वत्र फैला है। किसीको भी किसी अपराधपर कभी सरकारी दण्ड नहीं मिला। कभी अपने गाँवके नामपर दाग लगा ही नहीं। अब यदि अधरबाबू दण्डित हो गये तो गाँवपर घबरा लग जायगा। लोग चर्चा करेंगे कि उस गाँवमें ऐसे लोग रहते हैं। अतः प्रकारान्तरसे गाँवका ही नाम बदनाम होगा। आगे चलकर इससे कोई लोग अनुचित लाभ उठाकर गाँववालोंको परेशान भी कर सकते हैं। अतः इस भावी विपत्ति तथा कलंकके टीकेसे बचनेके लिये भी अधरबाबूपर कोई कार्यवाही नहीं होनी

चाहिये, और वे निर्दोष ही छूट जाने चाहिये। गाँवभरको निष्कलङ्क बनाये रखनेके लिये यह बड़ा आवश्यक है।’ गाँववाले तो यह सब सुनकर दंग थे। कोई मन-ही-मन रामतनु बाबूकी प्रशंसा कर रहे थे और कोई-कोई उनकी इस दयाको कायरता, देश काल-पात्रका विरोधी आचरण, अपराध बढ़ानेकी चेष्टा और मूर्खता बतला रहे थे। रामतनु बाबूकी आँखोंसे परदुःखकातरताके कारण आँसू बह रहे थे।

उधर पुलिसके आते ही गाँवभरमें समाचार फैल गया था। अधरबाबूकी स्त्री बड़ी धवरा रही थी। वह भली थी, वह पतिको यह सब दुष्कर्म करनेसे रोका भी करती थी। पर वह खल-हृदय उसकी बातको मानता नहीं था। रामतनु बाबूकी स्त्री अबलसे उसकी बहुत प्रीति थी। रामतनु बाबूकी पत्नी—यह सोचकर कि कहीं आवेशमें आकर गाँवके लोग अधरबाबूकी स्त्रीको परेशान न करें—दौड़कर उसको अपने घर ले आयी थी और उसको समझा दिया था कि ‘हमलोगोंके द्वारा अधर बाबूका कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा।’ वह अपने भले पति रामतनु बाबूके सत्-स्वभावसे परिचित थी और इस स्वभावके रक्षण तथा संवर्धनमें उनकी सहायक भी थी। अस्तु! इस समय रामतनु बाबू गाँववालोंसे जो कुछ कह रहे थे, सब अधरचन्द्रकी स्त्री सुन रही थी और उसके हृदयमें रामतनु तथा उनकी पत्नी अबलके प्रति श्रद्धा बढ़ी जा रही थी और अपने पतिके दुष्ट स्वभावके कारण अपने प्रति लज्जा और घृणा।

गाँववालोंमें श्रीहरिपद नामक एक सात्विक स्वभावके बृद्ध सज्जन थे। उनको रामतनुकी बातें बहुत अच्छी लगीं और उन्होंने रामतनु बाबूकी प्रशंसा करते हुए तथा उनका समर्थन करते हुए गाँववालोंको समझाया। गाँववालोंका मन कुछ पलटा। इतनेमें डाक्टर आ गये। डाक्टर भी रामतनु बाबूसे परिचित तथा उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। रामतनु बाबूने समझाकर डाक्टरसे यह लिखवा लिया कि ‘उन्होंने सब जाँच कर ली है। रिपोर्ट पीछे देंगे।’ रामतनु बाबूने अधरचन्द्रके अनुकूल रिपोर्ट लिखनेके लिये डाक्टरसे बहुत अनुरोध किया, पर डाक्टरको उनकी बात नहीं जँची। आखिर वे इस बातपर राजी हो गये कि ‘हम रिपोर्ट अभी नहीं दे रहे हैं। इस बीच आप दारोगाजीको राजी कर लीजिये; केस ही न चले तो फिर हमारी रिपोर्टकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। सारा मामला ही समाप्त हो जायगा।’ इसीके

अनुसार उन्होंने रिपोर्ट पीछे देनेकी बात लिख दी थी।

डाक्टरके लौट जानेपर रामतनु बाबू गाँवके चार-पाँच सम्भ्रान्त वृद्ध पुरुषोंको लेकर थानेपर गये। दारोगाजीको सब बातें समझायीं और रो-रोकर श्रीअधरचन्द्र तथा उसके साथियोंको बिना केस चलाये छोड़ देनेका अनुरोध किया। दारोगापर रामतनुजीके इस विलक्षण व्यवहारका प्रभाव पड़ा। उस दिन भाग्यसे थानेमें पुलिसके सर्कल इन्स्पेक्टर प्रमथ बाबू आये हुए थे। वे भी यह सब सुन-देख रहे थे। उनपर प्रभाव पड़ा। दारोगाजीने उनसे बात की। ये सारी बातें अधरचन्द्र तथा उनके साथी भी सुन रहे थे। गाँवमें भी रामतनुकी चेष्टा तथा बातें वे देख चुके थे। अतः उनका हृदय अपने दुष्कर्मपर पश्चात्तापकी आगसे जल रहा था और वह क्रमशः बदलकर निर्मल हुआ जा रहा था। जो काम बड़े-बड़े दण्डों तथा जेलोंसे नहीं हो सकता, वह रामतनुजीके सद्ब्यवहारसे अनायास हो रहा था।

प्रमथ बाबूने बीचमें पड़कर गाँववालोंसे कहा—‘देखिये ! आपलोग एक अपराधीको, जो अपराध करते समय पकड़ा गया है, बचाने जाकर अपराध बढ़ानेमें सहायक बन रहे हैं और प्रकारान्तरसे समाजका तथा अपने गाँवका अहित करने जा रहे हैं। ऐसे अपराधीको जरा भी दण्ड नहीं मिलेगा तो अपराध करनेवाले लोगोंका दुःसाहस बढ़ेगा जो समाजके लिये बड़ा घातक होगा। ये रामतनु बाबू तो साधुहृदय हैं, ये इस बातको नहीं समझ सकते। पर आपलोग इनके इस पागलपनका साथ क्यों दे रहे हैं ?’

इसपर श्रीहरिपद तथा रामतनु बाबूने अनेकों युक्तियोंसे प्रमथ बाबूको समझानेकी चेष्टा की कि वास्तवमें दण्डसे अपराध नहीं घटते। अपराध घटेंगे तो प्रेम तथा सहानुभूतिसे ही घटेंगे। कष्टके समय अहैतुक सेवा प्राप्त करनेपर ही अपराधीका हृदय-परिवर्तन होगा। फिर उन्होंने यह भी कहा कि ‘हमलोगोंने निश्चय किया है कि न तो आपको अधर बाबूके विरुद्ध एक भी गवाह मिलेगा, न कोई सबूत ही। तब आप क्या करेंगे।’

प्रमथ बाबू प्रभावित तो पहलेसे ही थे। अब उनपर और भी प्रभाव पड़ा। पर उन्होंने जरा रुखाईसे कहा—‘देखिये, मुझे आपलोगोंके प्रति आदर है—आपकी उदारताका मैं सम्मान करता हूँ, पर इस प्रकार सहसा अपराधीको छोड़कर हमलोग

कर्तव्यविमुख नहीं होना चाहते। हम सोचेंगे—क्या किया जा सकता है। आपलोग अभी उन्हें छोड़ाना चाहते हैं तो हमलोग अस्थायी रूपसे इन्हें छोड़ देते हैं परंतु कोई इनकी जमानत देनेवाले आपलोगोंमेंसे तैयार हो जायँ।’

इसपर रामतनु बाबू तुरंत बोल उठे—‘महाशय ! मैं जमानत-मुचलका जो कुछ आप कहें, देनेको तैयार हूँ।’

यह सुन-देखकर इन्स्पेक्टर प्रमथ बाबू तथा दारोगाजी दोनोंका हृदय द्रवित हो गया। वे भी आखिर मनुष्य ही थे। उन्होंने अधरचन्द्रको बुलाकर कहा—‘देखा तुमने ? सुनी सब बातें ? कहाँ तुम और तुम्हारा बर्ताव और कहाँ ये और इनका बर्ताव ! अब तुम क्या कहते हो ?’ अधरचन्द्रकी आँखें तो सावन-भादोंके बादल बनी हुई थीं। उसने रोते तथा धिधियाते हुए कहा—‘हुजूर ! पश्चात्तापकी आगने मेरे हृदयकी सारी कालिमाको जलाकर खाक कर दिया है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, मैं पिशाच हूँ और ये महान् संत हैं, देवता नहीं, देवताओंके भी पूजनीय महात्मा हैं। पर मैं बचना नहीं चाहता। मुझे आजन्म कालापानी मिलना चाहिये। पर मेरे अपराधोंको देखते तो आजन्म कालापानी भी पर्याप्त नहीं होगा। मैंने जीवनभर अपराध-ही-अपराध किये हैं। सदा भला करनेवालोंका भी सदा बुरा किया है। यद्यपि इनकी कृपासे मेरे हृदयकी सारी कालिमाका विषभरा कूड़ा जल गया है। इसीसे मैं बचना नहीं चाहता। आप मेरा चलान कीजिये। मैं स्वयं अपना अपराध स्वीकार करूँगा।’

यह सुनकर रामतनु बाबू रो पड़े और लपककर उन्होंने अधरचन्द्रको हृदयसे लगा लिया और उसके आँसू पोंछने लगे।

प्रमथ बाबूकी रायसे दारोगाजीने उन लोगोंको छोड़ दिया। सब कागज फाड़ दिये गये। सब सानन्द विदा हुए। प्रमथ बाबूने तथा दारोगाजीने रामतनु बाबूकी चरण-धूलि ली। रामतनु बाबू बड़े आदरसे अधरचन्द्रके गलेमें हाथ डाले चले जा रहे थे। रामतनु बाबूका चेहरा खिल रहा था और उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू थे। अधरचन्द्रका सिर नीचा था, मुख उदास था और नेत्रोंसे पश्चात्तापके आँसुओंकी धारा बह रही थी। गाँववाले घेरे चल रहे थे। गुंडे भी भले मानस बनकर घर झौट रहे थे।

—अधरचन्द्र जी

सांस्कृतिक प्रोग्रामोंमें लड़कियोंके नाच-गानपर कुछ रोक

बड़े आनन्दका विषय है कि उत्तरप्रदेश सरकारने कृपापूर्वक सांस्कृतिक प्रोग्रामोंमें विद्यालयोंकी लड़की तथा युवती छात्राओंके नाच-गानपर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिया है और यह आदेश दिया है कि 'सांस्कृतिक कार्यक्रमोंमें लड़कियोंके भाग लेनेसे पूर्व उनके अभिभावकोंकी लिखित अनुमति ले ली जाय तथा उनमें केवल निमन्त्रित लोगोंको ही आने दिया जाय। आम जनताको न आने दिया जाय।' इसके लिये हम उत्तरप्रदेश सरकारका उपकार मानते हैं। इस आदेशका कड़ाईसे पालन किया जाना चाहिये तथा अन्यान्य सरकारोंको भी इसका अनुकरण करना चाहिये। असलमें तो यह नाच-गान सर्वथा उठ जाना ही श्रेयस्कर है। सरकारसे प्रार्थना है वह विचार करे तथा गंदे सिनेमा एवं गंदे पोस्टरोंपर भी तुरंत रोक लगा दे।—सम्पादक

मेरा महत्त्व मेरे प्रभुकी दृष्टिमें है, वे मेरी कभी भी उपेक्षा नहीं करते

जीवनके सुखदायी अनुभवोंमेंसे ही मैं इस सत्यको भलीभाँति अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे प्रभु मेरी कभी भी उपेक्षा नहीं करते, कभी भी मुझे अपनी दृष्टिसे ओझल नहीं होने देते। जीवनमें ऐसे अवसर आ सकते हैं जब मुझे यह प्रतीत होता है कि मेरे प्रयत्न, मेरे शुभ प्रयास, मेरा परिश्रम, मेरी आकांक्षाएँ दूसरोंकी दृष्टिमें नगण्य हैं, अप्रशंसनीय हैं। ऐसे ही अवसरोंपर मैं यह अनुभव करता हूँ कि 'प्रभुकी दृष्टिमें मैं हूँ'—बस, यही सचमुच महत्त्वपूर्ण है, अन्य तो सब कुछ गौण है।

जब मैं स्वयंको अयोग्य, असमर्थ, तुच्छ एवं नगण्य अनुभव करने लगता हूँ, तब हृदयकी करुण भाषा-द्वारा प्रभुके अत्यधिक निकट सम्पर्कमें अपनेको अनुभवकर मैं उनसे अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों एवं सम्पूर्ण मानसिक प्रेरणाओंको उनकी असीम कृपासे आग्लावित कर देनेके लिये कहता हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरा महत्त्व केवल उन्हींकी दृष्टिमें है और केवल वे ही मेरे प्राणोंकी श्रृङ्खलितको समझ सकते हैं, केवल वे ही उसपर ध्यान देंगे।

किसीने कहा है कि जब कोई वस्तु जलमें डुबायी जाती है तो वह वस्तु जलद्वारा आत्मसात् होनेमें जलको कोई अतिरिक्त कष्ट नहीं देती। जैसे कोई भी वस्तु, किसी भी आकार-प्रकारकी, महासागरमें गिरती है, तत्क्षण स्वाभाविक ही जल चारों ओरसे उसे आवृत कर लेता है—उसे कोई अतिरिक्त कष्ट नहीं होता। इसीलिये मैं यह जानता हूँ कि मेरा अस्तित्व प्रभुके स्नेह-सागरमें डूब गया है। उनको मुझे अपने सहज स्नेह-द्वारा आत्मसात् करनेमें, अपने समस्त दैवी गुणोंसे मुझे अभिभूत करनेमें कोई अतिरिक्त कष्ट नहीं है।

इस तथ्यको समझकर मैं यह जानता हूँ कि प्रभुकी मुझपर अनन्त कृपा है, मेरे कार्योंमें उनकी ही प्रेरणा है, मेरी आकांक्षाओंमें उनकी कृपाका ही बल है, मेरे उद्देश्योंको उनकी कृपाका ही संबल प्राप्त है।

मैं प्रसन्न हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ मेरा महत्त्व केवल मेरे प्रभुकी दृष्टिमें है।

—कुञ्जबिहारी

गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित महाभारतसम्बन्धी साहित्य

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत

महाभारत-खिलभाग हरिवंश—हिंदी-अनुवादसहित

टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्तजी शास्त्री पाण्डेय 'राम'

आकार २२×३० आठपेजी, तीस पौंडके मोटे ग्लेज कागज, पृष्ठ-संख्या ११६२, चित्र बहुरंगे ८, इकरंगे ३२, पूरे कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ११.५० मात्र। डाकखर्च ३.५०।

महाभारतके आदिपर्व अध्याय २ श्लोक ८२-८३ में लिखा है कि हरिवंशके पारायणके बिना श्रीमहाभारत-पारायण पूर्ण नहीं होता। किंतु हरिवंशका पारायण गीता आदिकी तरह स्वतन्त्र भी किया जाता है। यह 'हरिवंश-पुराण' तथा 'हरिवंश-पर्व' इन दोनों ही नामोंसे विख्यात है। इसमें हरिवंशपर्व, विष्णुपर्व और भविष्यपर्व—ये तीन पर्व हैं।

श्रीजैमिनीयाश्वमेधपर्व—हिंदी-टीकासहित

टीकाकार—पं० रामाधारजी शुक्ल शास्त्री

आकार २२×३० आठपेजी, तीस पौंडके मोटे ग्लेज कागज, पृष्ठ-संख्या ४२०, चित्र तीन बहुरंगे, बारह इकरंगे, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ५.०० मात्र। डाकखर्च १.७५।

प्रस्तुत ग्रन्थमें बड़ी मधुर, रोचक, सरस, भक्ति-प्रेमपरिपूर्ण तथा अत्यन्त आकर्षक कथाएँ हैं। भक्त सुधन्वा, मयूरध्वज और ताम्रध्वज, चन्द्रहास तथा अर्जुनकी युद्ध-यात्रा आदिकी अद्भुत-अद्भुत कथाएँ चित्ताकर्षक एवं अत्यन्त विलक्षण हैं।

सनत्सुजातीय शाङ्करभाष्य—हिंदी-अनुवादसहित

अनुवादक—स्वामीजी श्रीसनातनदेवजी

आकार २२×३० आठपेजी, ग्लेज मोटे कागज, पृष्ठ-संख्या १३४, भाष्यकार भगवान् श्रीशङ्कराचार्य तथा श्री-सनत्सुजात और महाराजा धृतराष्ट्रके दो सुन्दर बहुरंगे चित्र, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य २.०० मात्र। डाकखर्च १.०६।

महाभारतकी नामानुक्रमणिका

भूमिका-लेखक—डा० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम्० ए०, डी० लिट०

आकार २२×३० आठपेजी, कागज ३० पौंडके मोटे ग्लेज, पृष्ठ-संख्या ४१६, मूल्य २.५०, पूरे कपड़ेकी जिल्द-सहित ३.५०, डाकखर्च अजिल्दका १.४५ सजिल्दका १.६५।

इसमें महाभारतमें आये हुए लोक, द्वीप, देश, नगर, जनपद, समुद्र, नद, नदी, सरोवर, कुण्ड, तीर्थ, वन, पर्वत, देवता, देवी, मातृका, यक्ष, गन्धर्व, नाग, नक्षत्र, अप्सरा, राक्षस, असुर, दैत्य-दानव, ऋषि-मुनि, राजा, अन्यान्य मनुष्य, स्थान, वस्तु, पर्व आदिके नाम तथा कौन नाम कहाँ किस प्रसङ्गमें आया है, इसके उल्लेखसहित सबकी अनुक्रमणिका दी गयी है।

महाभारत-परिचय [अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग]

(महाभारतके सम्बन्धमें विद्वानोंके महत्त्वपूर्ण निबन्ध)

आकार २२×३० आठपेजी, कागज ३० पौंडके मोटे ग्लेज, पृष्ठ-संख्या २५६, मूल्य १.७५, सजिल्द २.५०, डाकखर्च अजिल्दका १.१५, सजिल्दका १.३१।

महाभारतका बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग परिचय देनेवाले कुछ महत्त्वके समीक्षात्मक लेख तथा महाभारतके प्रधान पात्रों और महाभारतमें आये हुए कुछ प्रसङ्गोंका परिचय दिया गया है। साथ ही महाभारतके मूल स्वरूप, उसकी श्लोक-संख्या तथा रचना-कालके सम्बन्धमें भी विचार किया गया है और 'महाभारतमें भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप तथा लीलाकार्य'का परिचय दिया गया है।

चित्रोंमें—महाभारतके प्रमुख पात्र

(रंगीन ६ तथा सादे १७—कुल २३)

बढ़िया आर्टपेपरपर सुन्दर छपे हुए १० इञ्च×७। इञ्च साइजके महाभारत-सम्बन्धी २३ चित्रोंके इस संग्रहका मूल्य १.०० मात्र। डाकखर्च .८८।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

प्राचीन भारतीय संस्कृतिका प्रदर्शक

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत एक लाख श्लोकोंका महान् ग्रन्थ सचित्र, महाभारत (सरल हिंदी-अनुवादसहित)

(सम्पूर्ण ग्रन्थ छः खण्डोंमें सजिल्द)

आकार २२×३० आठपेजी, कागज ३० पौडके मोटे ग्लेज, पृष्ठ-संख्या ६६२०, चित्र-संख्या बहुरंगे ७९, सादे २२५ तथा लाइन ५६४, कुल ८६८, मूल्य ६५) रुपये। (१००) रुपयेके मूल्यकी सब पुस्तकें मिलाकर लेनेवालोंको उनके रेलवे स्टेशनतकका रेलभाड़ा तथा पैकिंग मुफ्त। नियमानुसार १५ प्रतिशत कमीशन भी मिलेगा।

महाभारतके प्रत्येक खण्ड अलग-अलग भी मिलते हैं। विवरण इस प्रकार है—

खण्डोंमें आये पर्वोंके नाम	पृष्ठ-संख्या	रंगीन चित्र	सादे चित्र	लाइन चित्र	मूल्य
प्रथम खण्ड—आदिपर्व और सभापर्व	९६२	९	४०	१०८	११.००
द्वितीय खण्ड—वनपर्व और विराटपर्व	१११०	१२	४०	२१४	१२.५०
तृतीय खण्ड—उद्योगपर्व और भीष्मपर्व	१०७६	२३	३६	८०	१२.५०
चतुर्थ खण्ड—द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व	१३४६	१३	४०	९१	१५.००
पञ्चम खण्ड—शान्तिपर्व	१०१४	१०	३१	१६	११.५०
षष्ठ खण्ड—अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व	१११२	१२	३८	५५	१२.५०
कुल जोड़	६६२०	७९	२२५	५६४	७५.००
पूरा ग्रन्थ एक साथ लेनेपर रियायती मूल्य					६५.००

महाभारत—मूलमात्र, सम्पूर्ण ग्रन्थ चार भागोंमें (सजिल्द)

आकार २२×३० आठपेजी, मोटे कागज, चार जिल्दोंमें सजिल्द, कुल पृष्ठ-संख्या २७७६, चित्र-बहुरंगे १४ तथा सादे ४, कुल १८, मूल्य २२.५० मात्र।

सम्पूर्ण महाभारत मूलका इतना मूल्य बहुत ही सस्ता कहा जा सकता है। चारों भाग अलग-अलग भी मिलते हैं। विवरण इस प्रकार है—

भाग १—आदि, सभा और वनपर्व। रंगीन चित्र तीन, पृष्ठ ८०४, सजिल्द, मू० ६.००

भाग २—विराट, उद्योग, भीष्म और द्रोणपर्व। रंगीन चित्र चार, पृष्ठ ७४४, सजिल्द, मू० ६.००

भाग ३—कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री और शान्तिपर्व। रंगीन चित्र चार, सादा एक, पृष्ठ ७५६, स० मू० ६.००

भाग ४—अनुशासनसे स्वर्गारोहणतक शेष छः पर्व। रंगीन चित्र तीन, सादे तीन, पृष्ठ ४७२, स० मू० ४.५०

इस प्रकार अठारह पर्व तथा एक लाख श्लोकोंका यह दुर्लभ और बृहद् ग्रन्थ केवल २२.५०में मिल सकता है। विद्वानोंको इससे लाभ उठाना चाहिये।

आर्डर देते समय अपने रेलवे स्टेशनका नाम स्पष्ट लिखना चाहिये। यहाँ आर्डर देनेसे पहले स्थानीय पुस्तक-विक्रेतासे माँगिये। इससे आपके समय और खर्चकी बचत होगी।

पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

हमारी निजी दूकानें—कलकत्ता, दिल्ली, पटना, कानपुर, वाराणसी, हरिद्वार तथा ऋषिकेश।